R.N.I.No.-CHHHIN16015/2014/59925 ISSN 2456-2130 Bastar Paati

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,
जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

•मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•

अंक–14+15+16 सितम्बर 17 –मई 18

प्रकाशक एवं संपादक
सनत कुमार जैन
सह संपादक
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'
महेन्द्र कुमार जैन
शब्दांकन
सनत जैन
मुख पृष्ठ
श्री खेम वैष्णव

सहयोग राशि:–साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन 50 रूपये जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं। **अन्य किसी को भी सहयोग राशि न देवें।**

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

काव्य/बलविंदर 'बालम'/1
पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
बहस/साहित्य में अद्वैत/6

हरिहर वैष्णव पर विशेष

एक मुलाकात/हरिहर वैष्णव/12
कहानी/तकाबी/हरिहर वैष्णव/18
काव्य/हरिहर वैष्णव/21
रंग रंगीला बस्तर/आलेख/हरिहर वैष्णव/22

संपादक की कलम से

नियति की नियत/आशीष कंधवे/28
काव्य/राजकुमार राजन/31
आलेख/आज के परिदृश्य में लघुपत्रिकाएं/डॉ अनिल कुमार जैन/32
आलेख/सामाजिक संदर्भों में वर्तमान हिन्दी कविता की स्थिति/उमेश महादोषी/33
आलेख/छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति की पीड़ा/सुधा वर्मा/35
लघुकथा/सकीना/नरेन्द्रसिंह परिहार/39
काव्य/रामचरण यादव 'याददाश्त'/39
काव्य/शकुंतला तरार/कृष्णकुमार शर्मा/40
आलेख/सपना/डॉ जयसिंह अलवरी/41
कहानी/अंकुर/डी. प्रकाश राव/42
काव्य/सुमित कुमार झा/44
कहानी/लाल अंगूठी/45
बढ़ते कदम/काव्य हर्ष लाहोटी/49
चिट्ठी आई है/दादाजी की चिट्ठी/50
शोध आलेख/मधु जैन/51
शोध आलेख/स्त्री होने की व्यथा/आशारानी पटनायक/53
काव्य/आरती सिंह/55
समीक्षा/डॉ शैल चंद्रा/खुदेजा खान/56
समीक्षा/डॉ रामकुमार बेहार/उर्मिला आचार्य/57
समीक्षा/अविनाश ब्यौहार/सनत कुमार जैन/59
नक्कारखाने की तूती/60
साहित्यिक उठापटक/61
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/63

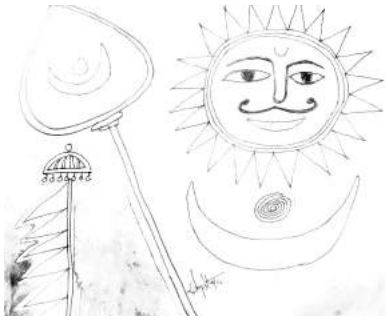

काव्य

ग़ज़ल

जब भी खंडित रिश्ते होते दुश्मन बनते यार।
खार कभी गुल नहीं बनते, गुल नहीं बनते खार।।
जिसके पहले डंस ने सारा तन–मन जख्मी किया,
कीचड़ से उठा कर बिच्छु कर बैठे एतबार।।
दीमक भांति धीरे–धीरे बंदे को खा जाता,
सौ बीमारी की जड़ जैसा होता है तकरार।।
एतबार कभी न करना तुम तेज हवा के ऊपर,
यह कोई इकरार नहीं करती ना करती इनकार।।
गंदी जीभ यहां भी जाए झगड़े मोल उठाती,
म्यान में बंद अच्छी लगती दोधारी तलवार।।
'बालम' बंदे का तो जीवन सांसों का मोहताज,
सिर्फ बहारों के आने से खिलता है गुलजार।।

बलविंदर 'बालम'
ओंकार नगर,
गुरूदासपुर (पंजाब)
मो.–09815625409

पाठकों से रूबरू

ऐसा लगता है कि हम सब खुद को ही बहलाने में ही चतुराई मान बैठे हैं। हम खुद ही बहल जाते हैं और समूचा साहित्य जगत यूं ऐसे ही बहल जाता है। साहित्य समाज का आईना है, क्रांति है, समाज को बदलने की कूबत रखता है आदि आदि। देववाणी सरीखे ये आसमानी शब्द यथार्थ में कहां मिलते हैं हम सब अनजान हैं। पर क्या हम सच में अनजान हैं ? कभी कभी लगता है साहित्यकार भी आडम्बरी हो गये हैं। शेष दुनिया की तरह। बातें तो बड़ी बड़ी और यथार्थ में.....। किसी को भी आईना दिखाना बेकार है बल्कि एक बड़ा सा आईना खुद के लिए खुद के घर में लगाना आवश्यक हो गया है। साहित्य के बारे में न जाने कितनी भ्रांतियां फैल गई हैं जिससे पार पाना असंभव ही मान लिया जाय तो बेहतर होगा।

अब ये बात और है कि हम यहां एक और जुमला चिपका सकते हैं कि तबीयत से एक पत्थर उछालो तो मेरे यारों, आसमान में भी छेद हो सकता है। या फिर असंभव शब्द फलाने के शब्दकोश में ही नहीं था।

बहलाया जाय मन, क्या बुराई है।

खैर! जाने दीजिए इन बातों को। हमें तो अपना कर्म करना है फल की चिन्ता नहीं करनी है। है कि नहीं ?

क्या कहा आपने ? नहीं जमा ये भी ? ग्रंथों से निकला है इसलिए ?

साहित्य के लिए समर्पित व्यक्ति जाने कब खुद को दुनिया के बहाव में बहा देता है वह खुद ही समझ नहीं पाता। वह ये बात नहीं समझ पाता कि साहित्य वास्तव में क्या है मात्र लेखन, पठन या फिर साहित्य का विस्तार। इन सबको पूरक कह देना तो जल्दबाजी ही होगी। जरा ध्यान से समझने का प्रयास करें, विचार करने का प्रयास करें कि साहित्य वास्तव में क्या है ? वर्तमान दौर तो दूसरों को खारिज करना ही साहित्य का पर्याय बन गया है। वर्तमान साहित्य प्रतिक्रियात्मक विधा बन गई है। वास्तविक साहित्य को दो खेमों में बांटने का प्रयास लगातार चल रहा है।एक खेमा चाहता है कि जल्दी से जल्दी हर ओर उनका परिभाषित साहित्य बिखर जाये, सब की आलमारियां ऐसे साहित्य से अंट जाये और वह साहित्य भविष्य के लिए इतिहास बने, उन्हें मान्यता दे जाये। सर्वशक्तिमान बने हुए चंद लोगों ने लोगों की सोच को ही परिवर्तित करने का बेड़ा उठा लिया और आज एक ही तरह का साहित्य हर ओर नजर आता है। जैसे पैरासीटामाल अलग अलग रैपर और कंपनी में दर्द निवारण और ताप नियंत्रण के लिए दी जाती है। एक ही विषय, एक ही सोच, एक ही नजरिया, एक ही टारगेट, समस्या का एक ही उपाय। सबकुछ एक सांचे में ढला हुआ।

लघुपत्रिकाओं का वजूद कैसा है और ऐसा क्यों है हमें अब सोचना ही पड़ेगा। ये ऐसा समय है कि हर ओर प्रतिस्पध र्ा है। प्रिन्ट मीडिया की प्रतिस्पर्धा है अब सोशल मीडिया से। मोबाइल क्रांति ने केमरा, घड़ी, पेजर, कैलक्यूलेटर, मेगनेटिक नीडिल, जैसे न जाने कितने ही स्थापित स्तंभों को धराशायी कर दिया है। सोशल मीडिया नामक एक खतरनाक बीमारी ने डिक्शनरी, बुक, न्यूज पेपर, टीवी, एटलस (और जोड़ते जायें) को मरणासन्न कर दिया है। इस दौर में भयंकर खतरा तो इससे ही है। ये अलग बात है कि लोगों की पढ़ने और ग्रहण करने की क्षमता बढ़ी है पर वे अब याद नहीं करते क्योंकि उनके पास जेब में ही सबकुछ है। जब देखना हो निकालो, देखो, पढ़ो और रख दो।

हमें विचार करना होगा कि शीर्षस्थ पत्रिकाओं की संख्या बढ़ने के बजाय घट क्यों रही है और जनपदों से निकलने वाली कई पत्रिकाओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है। इस प्रश्न का उत्तर ही सारा परिदृश्य एक ही पल में समझा देता है। यह बात अलग है कि वे अपने आर्थिक संसाधन की कमी के चलते अल्पजीवी होती हैं या फिर सीमित दायरे में रहने को मजबूर होती हैं। धार्मिक और सामाजिक कट्टरता के इस दौर में हमारी भूमिका क्या है ? नैतिक मूल्यों की स्थापना में हमारी भूमिका कहां है ? लघुपत्रिकाओं का अस्तित्व संकट में क्यों आ रहा है ? पाठक आपकी 10 से लेकर 50–60 रूपये की पत्रिका खरीदने की अपेक्षा गुटका खाना पसंद करने लगा है, कभी सोचा है हमने ऐसा क्यों ?

संतोष रोज सुबह उठकर अपने दो प्लास्टिक के डब्बों में चौक के नल से पानी भर कर अपने घर लाता है जिससे उसकी मां और उसके पिता नहाते हैं कपड़े धोते हैं और बचा हुआ पानी बर्तन धोने काम आता है। दोपहर को अपने काम निबटाकर अब वो एक बड़ी नामचीन पत्रिका उठाकर पढ़ता है। एक आलेख पर उसकी नजर जाती है वाराणसी बना विध ावाओं का शहर। वह पन्ने पलटता है। अगले पन्ने पर एक छोटी सी लघुकथा दिखती है वह उसे पढ़ना शुरू करता है। वृद्धाश्रम में एक बाप अपनी जवानी में अपने दो साल के खोये बेटे के मिलने की खुशी को याद कर रो रहा था।

अब संतोष पुनः पन्ने पलटता है। कविताओं का पन्ना सामने था। कविता की दो लाइनें पढ़ता है। आंसूओं से भरी दुनिया में / एक मां कसमसा रही है / क्योंकि उसकी बेटी भी मां बनने वाली है।

संतोष क्रोध से पत्रिका एक कोने में फेंक देता है। चूंकि घर में खिड़की नहीं थी वरना वहां से सीधे बाजू में बहते नाले में ही फेंकता। उसके मुंह से एक गंदी गाली निकलती है लेखक के लिए।

पर क्या संतोष गलत नहीं था ? लेखक की गलती से बड़ी गलती तो..... की थी। इसलिए ही हर घर में एक बड़े से आईने की जरूरत है खुद की आंतरिक सूरत निहारने और संवारने के लिए।

हर ओर एक ही चिन्ता में दुबले हुए जा रहे हैं पाठक कहां हैं ? पत्रिका कैसे बिके ? कैसे उसका खर्च निकले ? परन्तु कारण क्या है इस पत्रिका विरोधी समय का कौन विचार करना चाहेगा ? कौन कौन और कौन ?

मिठाई सेहत के लिए श्रेष्ठ है, फास्टफूड खाना जरूरी है, कोल्ड ड्रींक, आइसक्रीम स्वास्थकर है, कब तक ये स्थापित किया जायेगा ? ये छद्म यथार्थवाद कब तक हमारे कंधे पर जबरन पटका जायेगा ? प्रकृति से दूर कृत्रिमता को, जमीन से उखाड़ कर गमले में उगाने को कब तक मान्यता दी जायेगी ? अपने संस्कारों को दुत्कारने के लिए कब तक हम अपनी लात उठाये रखेंगे ? मां की गोद का आनंद झूलाघर में लेने को कौन मजबूर कर रहा है ? कौन बार बार वृद्धाश्रम के होने की बात दिमाग में डाल रहा है ? श्रेष्ठताबोध से दबे हुए लोगों की कब तक हम इज्जत करने पे मजबूर रहेंगे ? दिल की न सुनकर दूसरों की सुनना और रचना, किस मजबूरी में करते हैं ? किसने बनाये हैं आधुनिक साहित्य के प्रतिमान जिसमें भारतीयता को पददलित करना ही श्रेष्ठ लेखन साबित किया गया है ? एक के अधिकार के लिए अनेक लोगों के अधिकारों की अनदेखी करना किस दुनिया का नियम कानून है ?

छद्म यथार्थवाद! कितना भयंकर अर्थ है इसका हम और आप इसके उच्चारण से ही समझ सकते हैं। जितना कठिन उच्चारण है उतना ही कठिन इसका यथार्थ है। इस बड़े गंभीर शब्द 'यथार्थवाद' की आड़ में लघुपत्रिकाओं की आत्मा को ही मार दिया गया है। हम किसके लिए लिख रहे हैं हम खुद ही अनजान हैं। खुद को श्रेष्ठ साबित करने की होड़ शायद इंसान की भी परिभाषा बदलने वाली है। साहित्य तो बदल ही गया है। आनंद के अलावा साहित्य में सबकुछ है।

यथार्थ यानी सत्य का मंचन, वो कागज पर कलम के साथ! बहुत कठिन है ये विधा भई! इसे तो साहित्य का नाम न दिया जाये, यही उचित होगा।

हर वक्त चिंतन करना है, कभी गरीबों का तो कभी वंचितों का और कभी....। कुछ आप भी सोचिये सरकार! सभी की चिन्ता में दुबले हो जाओ। कुछ तो करो सार्थक। क्या यूं ही अपना जीवन बिता दोगे ? अपने सुख में लीन रह कर दूसरों के प्रति अनदेखी करना बिल्कुल गलत है। ये गीता या रामायण का प्रवचन नहीं है ये साहित्य के यथार्थवाद का निचोड़ है। ये बात अलग है कि ये बातें गीता और रामायण में भी लिखीं हैं। आधुनिक यथार्थवाद और पुरातन धार्मिक बोरिंग प्रवचन में तुलना करना ही बेकार है फिर भी कुछ मिनिट्स के लिए कर ही लेते हैं। वर्तमान साहित्य कहता है कि पैसा कमाने वाला शोषक ही होगा इसलिए उसे कमाने ही न दिया जाये या फिर उससे छीन छान कर गरीबों में बांट दिया जाय। यथार्थवाद इसी के चित्रण को ही कविता, कहानी और लेख मानता है बाकि सब कचरा।

पुरातन भारतीय धार्मिक बोरिंग प्रवचन का नाम लेते ही कूपमंडूकता कूढ़मगजगिरी ही जाहिर हो जाती है। (उ...ब..ा. .सी आ रही है।) इसमें भगवान माना गया है वही तो नेरोमांइडेड सोच है। हमें बस यहीं रूक कर विचार करना है इसके आगे जाना यानी पागलपन। भले ही इस भगवान के सहारे सर्वमंगल की कामना की गई है। ऐसे समाज की परिकल्पना की गई है जिसमें आटोमेटिक ढंग से गरीबी और वंचितों की उत्पादकता रूकी रहे। पाप (दूसरों का हक मारना) करना नहीं है। पर पाप पुण्य तो पोंगापंथी सोच है इसलिए दूर रहो। परिवार का, समाज का, नगर का और देश का हर व्यक्ति अपने कर्तव्य के लिए आप ही आप जागरूक रहे। किसी दूसरे पर बोझ न हो। आप ही आप चलने वाला सिस्टम तैयार किया जाता था जिसमें कुंठा के स्वर नहीं होते थे। ये बात अलग है कि कुंठित तो उस वक्त भी थे। संतोष और सहनशीलता का गुण ही होता है जिससे घर परिवार और समाज निर्वाधरूप से चलता है। सभी की महत्वाकांक्षाएं अगर उग्र रूप धारण कर लें तो संवेदनशीलता का नामों निशान ही मिट जायेगा। ये कैसे हो सकता है कि पानी पड़े और आग न बुझे या फिर दारू भी बेचें, प्रचार करें खूब बिक्री की अपेक्षा भी रखें और और घर परिवार न टूटे, नालियां भी दरूओं से खाली रहे। ये कैसी परीक्षा विधि है ?

ये सारी बातें विषयांतर्गत ही हैं। यहीं से तो शुरू होता पत्रिकाओं के प्रति पाठकों का विचलन! वो पत्रिकाओं से इसलिए ही भागता है। उसे जो पढ़ना है वो तो है ही नहीं पत्रिका में। जैसा जीवन जी रहा है वो तो दिखता ही नहीं उसकी खरीदी पत्रिका में। बेकार की समीक्षा, बेकार की पुस्तकों की चर्चा, किसी अनजाने को स्थापित करने की चाल वो भी उस पाठक के पैसों से जो अपने घर से निकल कर अपना बहुमूल्य समय लगाकर बुकडिपो जाता है और फिर अपनी मेहनत के पैसों से पत्रिका खरीदता है। मिलता क्या है वही वही जो उसने कभी किया ही नहीं, वैसा चरित्र जिया ही नहीं। घटिया कविताओं से भरे जानबूझ कर झूठ लिखे गये विषयों पर घटिया कहानी और आलेख। जानबूझकर वैमनस्य फैलाने वाली बातें। जितना लोग नहीं जानते समझते हैं उससे कहीं ज्यादा नकारात्मकता से भरी बातों का जखीरा। ये है

साहित्यिक पत्रिका का स्वरूप।

मेरे पास फोन आते हैं पत्र आते हैं कि आपकी पत्रिका में इन सुधारों की आवश्यकता है। पहले तो आपकी पत्रिका नाम ही गलत है पाति में बड़ी 'ई' की मात्रा लगेगी। विवरण वाला पेज एकदम भरा होता है जरा दूर दूर होना चाहिए। भीतर के पेज में मेटर के बीच स्पेस होना चाहिए। लेखक का नाम और योग्यता आदि का विवरण अच्छे से दिया होना चाहिए। साहित्यिक संकलनों की समीक्षा ही नहीं है। रेखाचित्र फिलर की तरह हैं। लेखकों की वरिष्ठता के अनुसार उनकी रचनाओं का प्रकाशन होना चाहिए। कमजोर लेखकों को तो बिल्कुल नहीं छापो। नये लोगों को मत लो पत्रिका का स्तर गिरता है। अनजान लोगों को छाप दिया कौन पढ़ेगा तुम्हारी पत्रिका ?

जब मैंने इंजीनियरिंग की पढ़ाई खत्म की तब नौकरी पाना एक कठिन काम हो गया था। जहां भी जाओ उनको अनुभवी चाहिए, जानकार चाहिए। जब नये को आप काम दोगे ही नहीं तो वह कैसे जानकार बनेगा। वो बात बैठी है मेरे मन में। मैं नये लोगों को मौका देना, अनजान लोगों को मौका देना सही मानता हूं। नामचीन तो कहीं न कहीं प्रकाशित हो ही जाता है। अच्छा एक बात और कहना चाहूंगा कि लगभग 500 के आसपास लेखकों की फौज है जो अपने आपको अग्रश्रेणी का मानते हैं। इन्हें ही हर पत्रिका में आप पढ़ते हैं ये ही वर्तमान के प्रेमचंद और निराला हैं। इनके बूते ही पत्रिकाओं का वजूद है।

मिथकों की तो बात ही न करें। साहित्यिक मिथक ऐसे हैं कि अगर हम एक नामचीन के साथ चाय भी पी लें तो उसके बूते अपने क्षेत्र में खुद को राजा घोषित कर सकते हैं। कर लो भाई किसने रोका है, किसने मना किया है।

पर क्या पाठक उन्हें पढ़ना चाहता है ? कभी सोचा है ? साहित्य की तथाकथित श्रेष्ठ पत्रिकाओं की विस्तार संख्या भी 5000 नहीं है। लघुपत्रिकाएं भी 50 से 100 कापी छाप कर अपने अहम को तुष्टि देने का माध्यम बन चुकी हैं। नामचीन पत्रिकाएं भी ले देकर पांच सौ का आंकड़ा नहीं पार कर पा रहीं हैं।

कुल मिलाकर पाठक कहां है ? कौन है जो पाठकों के लिए विचार कर रहा है ? कौन है जो पाठकों के हित के लिए प्रकाशन से जुड़ा है ? कौन है जो पाठक की पसंद पर काम करना चाहता है ? कौन है जो स्वयं के लिए अवार्ड के जुगाड़, स्वयं को आगे रखने के लिए, अपने मित्रों को उपकृत करने के लिए, सरकारी अनुदान विज्ञापन पाने के लिए पत्रिका नहीं निकाल रहा है, ईमानदारी से ढूंढा जाये तो उंगलियां भी बहुत ज्यादा हो जायेंगी गिनती लगाने के लिए। तू मेरी छाप मैं तेरी छापूंगा, तू मेरे ऊपर अंक प्रकाशित कर मैं तेरे ऊपर केन्द्रित अंक प्रकाशित करूंगा। तू मुझे मुक्तिबोध बना मैं तुझे प्रेमचंद बना दूंगा। इस दौर में पाठक है कहां ? कौन सोच रहा है उनके लिए ? तो फिर पाठकों का रोना क्यों ? अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिए मोटी मोटी पुस्तकें निकालने वाले शब्दों के खिलाड़ी, एन जी ओ बनाकर सरकारी माल अंदर करने वाले व्यापारी कब से साहित्यकार बन गये ? जब ऐसे लोग आगे आये हैं तो हम साहित्य के मौलिक स्वरूप को कैसे पा सकते हैं ? साहित्यिक पत्रिका का आधा भाग समीक्षा के लिए रिजर्व रहता है और पाव भाग एजेण्डापोषण के लिए। बचा पाव भाग अपना ज्ञान दर्शन बघारने के लिए। ऐसा ज्ञानदर्शन जिसका कोई औचित्य वास्तव में है ही नहीं। मात्र मुखचालन है।

इस अंक के साथ एक बहुत बड़ी बात बताना चाहूंगा। मैंने 120 लघुपत्रिकाओं को पत्र लिखे कि वे लघुपत्रिकाओं प्रकाशन में आने वाली परेशानियों के बारे में एक आलेख भेजें। पर आप अंक पढ़ कर जान सकते हैं कि क्या हुआ। हर जगह यूनियनबाजी है तो आज लघुपत्रिकाएं क्यों न अपने अधिकारों के लिए कुछ ठोस करें। पर हुआ टांय–टांय फिस्स। पर मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में दो बातें रखी हैं कि डाक पंजीयन के लिए मासिक पत्रिका तक ही सीमा रखना आवश्यक न हो। और पत्रिका भेजना मुफ्त हो। अभी बस्तर पाति के लिए शायद किसी ने शिकायत की कि डाक पंजीयन के लिए त्रैमासिक मान्य नहीं है। डाक विभाग द्वारा अनजाने में ऐसा पंजीयन कर दिया गया था। मेरे द्वारा पिछले अंकों की सारी राशि डाक विभाग में जमा करनी पड़ी। जबकि न जाने कितनी ही पत्रिकाएं 25 पैसे से लेकर बगैर पंजीयन के आ रही हैं। मेरे पास ही हर माह 18 पत्रिकाएं आती हैं। खैर! शिकायतकर्ता का धन्यवाद। मैं बेईमानी के मार्ग पर उसकी वजह से भटकने से बचा। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री की गुणवत्ता इससे पता चलती है।

पाठकों की चौपाल

समस्त सुधि पाठकगण नमस्कार! पाठकों की चौपाल लेखक और पाठक की चौपाल है। जिसमें लेखक और पाठक के बीच का संवाद पत्रिका के माध्यम से होता है। अतः आपसे निवेदन है कि समस्त प्रकार की औपचारिकताओं से दूर आप पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रियायें लिखें। समीक्षा में मात्र प्रशंसा के स्वर न हों बल्कि समालोचना भी हो। सम्पादक केन्द्रित पत्र के स्थान पर रचना केन्द्रित पत्र हमें अपनी पत्रिका मे सुधार हेतु प्रेरित करेंगे और साथ ही साथ सम्बंधित रचनाकार के लिए भी एक उपलब्धि होंगे। आपके द्वारा भेजे गये पत्र में सीधे रचनाओं पर बात होगी तो आपका कीमती समय किसी रचनाकार को अपनी रचनाओं में महत्वपूर्ण बदलाव के लिए प्रेरित कर सकता है। अतः निवेदन है कि आपके पत्र रचनाकार की रचनाओं पर केन्द्रित हों न कि रचनाकार पर केन्द्रित।

सम्पादक महोदय

श्रीमती खुदेजा खान पर केन्द्रित यह अंक देखा, अच्छा लगा। तुम्हारा साक्षात्कार और लेखिका के उत्तर ने इसे उत्कृष्ट बना दिया। लेखिका के उत्तर भी सहज, संयत, सारगर्भित रहे। लेखिका ने नारी की मर्यादित शालीनता के साथ मात्र प्रश्नों के उत्तर ही नहीं दिये वरन बदलते परिवेश विसंगतियों को भी सहज ढंग से प्रस्तुत कर अपनी अलग पहचान बनाई। आत्मश्लाधा से परे अपने ज्ञान, गहन गंभीर अध्ययन, मौलिक सूझ से अप्रतिम उत्तर दिये हैं। जिससे यह साक्षात्कार एक सर्वोत्तम उदाहरण की तरह, आगे भी इस विधा का सर्वश्रेष्ठ प्रारूप सिद्ध होगा। वरना आज यह औपचारिक निर्वहन का पर्याय बनकर रह गई है। आदरणीय सैनी का भी साक्षात्कार बहुत अच्छा रहा।

श्रीमती खुदेजा खान को मात्र सात पृष्ठ नहीं सत्ताईस पृष्ठ चाहिए थे। कहानियां उत्तम, भीड़, सेतु, चैरेवेति चैरेवेति, मां सबकी समान होती है, संस्मरण–खुदेजा की स्मृतियां, उत्तम लघुकथाएं, कविताएं भी उत्तम–सबको साधुवाद। दीपावली मिलन समारोह में माननीय संभागायुक्त श्री दिलीप वासनीकर जी ने शिरकत की जिससे प्रमाणित होता है कि ''बस्तरिया सबचो बड़े गुनिया''।***बी.एन.आर. नायडू, जगदलपुर***

आदरणीय सर, सादर चरण स्पर्श

आपके द्वारा बस्तर पाति के अंक के साथ ही साथ दीपावली मिलन कार्यक्रम की चर्चा की गई है, भावनाओं को नमन। आप के पत्र के दो बिन्दुओं पर बात करना चाहूंगा। पहली बात ये कि हमारे संभाग के संभागायुक्त श्री दिलीप वासनीकर जी हमारे ही क्षेत्र के हैं यहीं पैदा हुए हैं यहीं की माटी में पले बढ़े हैं। उनसे मिलकर उनके ज्ञान के स्तर को छूकर एक विशेष अनुभूति होती है। उत्साह का स्तर एकदम से बढ़ जाता है। आश्चर्य होता है कि ऐसा अद्भुत व्यक्तित्व हमारे साथ एकदम सरलता सहजता से खड़ा है। वे हम सबको हमेशा प्रोत्साहित करते हैं। मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनकी सहजता को प्रणाम।

दूसरी बात कि खुदेजा जी पर बस्तर पाति का पूरा 64 चौंसठ पेज भी कम है परन्तु पत्रिका का एक प्रोफार्मा है जिसके तहत हर विधा की रचनाओं को स्थान देना होता है। चूंकि पत्रिका देश के सभी हिस्सों में जाती है, इसलिए देश अन्य रचनाकारों को भी अपनी पत्रिका से जोड़ना होता है। बस्तर के एक रचनाकार पर केन्द्रित अंक निकालने का उद्देश्य है कि शेष भारत भी जाने कि इस साहित्य की उर्वर भूमि में न जाने कितने विद्वान हैं। हर अंक में बस्तर के एक रचनाकार को देश के सम्मुख रखेंगे और उनके साहित्य के संबंध में विचारों की विस्तृत जानकारी होगी। उनके द्वारा रचे साहित्य की बानगी दिखाई जायेगी। ***सम्पादक बस्तर पाति***

सम्पादक जी, नमस्कार

आपकी बस्तर पाति उत्तम पत्रिका प्राप्त हुई। सादर धन्यवाद। पत्रिका में मेरा पता अधूरा था परन्तु आपका मेरा प्रेम था जो पत्रिका मेरे ठिकाने पर पहुंच ही गई। पत्रिका में खुदेजा जी पर श्रेष्ठ सामग्री है। बहस कॉलम पठनीय है। ***अम्बु शर्मा, कोलकाता,***

आदरणीय अम्बु शर्मा जी, नमस्कार,

सबसे पहले तो आपको बहुत बहुत धन्यवाद। आपने लगातार पत्रिका में प्रकाशित रचनाकारों को उत्साहवर्धक पत्र लिखकर उन्हें लेखन के लिए प्रेरित किया है। लगभग सभी रचनाकारों ने फोन करके मुझे सूचना दी। रचनाकार की रचनाओं की सराहना से उनके लेखन में सुधार और निरंतरता आती है। बहस कॉलम में रचनाकार का नाम नहीं था तो आपने मुझे ही पत्र लिखकर बधाई पहुंचाने की जिम्मेदारी दे दी। मैं पत्रिका से उन तक सूचना पहुंचा रहा हूं। ***सम्पादक बस्तर पाति***

प्रिय सनत जी सस्नेह अभिवादन,

'बस्तर पाति' का अंक मिला। आभारी हूं। अंक बड़ी रूचि से पढ़ा। अच्छा लगा। कृपया हार्दिक बधाई स्वीकार करें। नये पुराने सभी साहित्यकारों को साथ लेकर चलने का आपका प्रयास स्तुत्य है। नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी स्नेह–सानिध्य और पुरानी पीढ़ी को नई पीढ़ी का सम्मान मिलना ही चाहिए। खुदेजा खान के साथ आपका साक्षात्कार उत्कृष्ट है। बिना लाग लपेट के अपनी बात स्पष्ट रूप से रखने के लिए उन्हें और उपयुक्त तथा समीचीन प्रश्न प्रस्तुत करने के लिए आपको पुनः बधाई एवं साधुवाद। उनकी संग्रहित रचनाएं भी अच्छी लगीं। अन्य सामग्री भी उत्कृष्ट और पठनीय हैं। कृपया सभी को मेरी ओर से बधाई एवं आशीष दें। ऐसी ही उत्कृष्ट रचनाएं पढ़ने की कामना रहेगी। शेष प्रभु–कृपा। सद्भावना के साथ। ***श्रीकृष्ण कुमार त्रिवेदी, फतेहपुर उ.प.***

आदरणीय श्रीकृष्ण जी, सादर नमन,

आपने विस्तार से अपनी भावनाएं व रचनाकारों की रचनाओं पर समीक्षा दी, समस्त रचनाकारों की ओर से सादर धन्यवाद। आपने महत्वपूर्ण बात रेखांकित की कि पुरानी और नई पीढ़ी का कैसा संबंध हो। वर्तमान दौर ऐसा है कि स्थापित साहित्यकार नये साहित्यकार को समाज में उठने देने में सहयोग ही नहीं करते हैं। वे नहीं चाहते कि कोई नया आकर उनके साम्राज्य में खलल डाले। इसके लिए वे कई तरह की कोशिशें करते हैं। वहीं नयी पीढ़ी पुरानों को सजावटी सामान बनाने पर तुली है। पर हम आपके विचारों के अनुरूप समझौतावादी रूख अपनाते हैं। ***सम्पादक***

सम्पादक जी

अंक मिला। आभार। पाठकों की चौपाल बहुत अच्छा स्तंभ है, धन्यवाद। लघुकथा 'मीटिंग' मे बॉस और मैम का भेद स्पष्ट नहीं हो पाने से कथा खुल नहीं पायी है। लघुकथा 'बिकाऊ माल' में राज्य की पतुरिया होने की बात कही गयी है, किसी राज्य का नाम नहीं देकर 'पड़ोसी राज्य कह देने से भी भाव उभर जाता। नाम लेने से विद्वेष पैदा होता है। करमजीत कौर की 'सेतु' कहानी मन को छू जाती है, बधाई। अनिता रश्मि की कहानी 'चैरेवति–चैरेवति' बहुत अच्छी लगी, डायरी से उपजी कथा। 'वजूद की तलाश' के लिए शगुफ्ता यास्मीन काज़ी को बधाई। महेश राजा की लघुकथा बहुत अच्छी लगी। यदि 'डरो' और 'दीवाली' में 'मैं' का प्रयोग नहीं करते तो कथा और मजेदार और परिपक्व हो जाती। डॉ. पूरनसिंह की लघुकथाएं 'फोटो', 'उड़न छू' और 'पुरूष' बहुत अच्छी लगी। तीनों में कथा चित्रवत दिखती है, बधाई। 'यूं मिलते रहना' लघुकथा में प्रहलाद श्रीमाली ने लादू भाई को बहुत अच्छे ढंग से चित्रित किया है। सुंदर प्रस्तुति के लिए तुम्हें बधाई। 'चुनाव से पहले' और 'वो' लघुकथा भी अच्छी लगी। पत्रिका की सफलता की कामना सहित, ***अंकुश्री सिदरौल, रांची***

आदरणीय सादर, आपने जिस गहन दृष्टि से पत्रिका का अध्ययन किया है वह वंदनीय है। रचनाओं के मर्मज्ञ कैसे होते हैं और किस बारीकी से सम्पादन किया जाना चाहिए आपके एक पोस्टकार्ड से समझ आया। आपने तो रचनाकारों से भी अधिक मेहनत अपनी समीक्षा में की है। आपकी यह टीप साफ साफ जता रही है कि आपके हृदय में बस्तर पाति का क्या स्थान है। हृदय से धन्यवाद सर आपका। *सम्पादक बस्तर पाति*

साहित्य में अद्वैत

साहित्य में अद्वैत

बहुत कम पढ़ा, सुना या गुना गया है। शायद यह पक्ष हिन्दी साहित्य में देखा ही न गया हो। ज्ञात को हम जानते समझते हैं। सुन एवं पढ़ चुके होते हैं, पर अज्ञात हमें जितना रोमांचित करता है, उतना ही भयभीत भी करता है। आखिर घने जंगल में राह कौन ढूंढना चाहेगा।

अद्वैत है क्या–इसे हम समझ लें फिर साहित्य में उसकी स्थिति कहां कहां हो सकती है, क्या अहमियत हो सकती है–इस पर विचार करेंगे।

जब ब्रह्म और ब्रह्माण्ड का भेद खत्म हो जाता है, ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं, खुद और खुदा में कोई फर्क नहीं रहता, रचना–रचयिता एक हो जाते हैं। रचना और सहृदय (पाठक) एक हो जाते हैं। हमारे सारे प्रश्नों, शंकाओं का विलय हो जाता है–वह स्थिति अद्वैत की है। एक गृहिणी रसोई में रखे अनेक पदार्थों से खना पकाती है। भिन्न तरह के मसाले, तत्वों और सामग्री मिलाकर वह एक चीज तैयार होती है जिसका हम कोई नाम देते हैं। आप बहुत बढ़िया सब्जी खा रहे हैं–आप पूछते हैं, वाह! कैसे बना!

क्या आप गृहिणी से ऐसा जवाब सुनना पसंद करेंगे– पंद्रह ग्राम नमक, पांच ग्राम शक्कर, एक पाव छोटा आलू, बारीकी से कटी तीन हरी मिर्च, एक लाल टमाटर, धनिया, हल्दी, लौंग, लहसुन की तीन कलियां.....धीमे आंच में आधे घंटे तक पकी, हर चार–पांच मिनट पर सब्जी को उलटा–पलटा। फिर आप को परोसा। इसमें मेरे प्यार का अंश भी है.....।

ऊपर जो वर्णन है एक सब्जी के तैयार होने का, वे सब किसी न किसी समय द्वैत स्थिति में–अर्थात अपने–अपने स्वतंत्र अस्तित्व में होंगे। गृहिणी का हाथ लगते ही उनकी स्वतंत्र महत्ता खतम हो गयी–और अब वे सिर्फ उस प्लेट भरी सब्जी के हिस्से हैं। तत्वों का मूल स्वभाव जाता रहा और नये सृजन में समा गया। एक नये नाम के साथ। इन तमाम विरोधी तत्वों (शक्कर, मिर्च, नमक इत्यादि) का विलय हो गया–सार संग्रह है–पर पूर्व स्थिति से भिन्न! सब्जी वे सभी मिलकर बने हैं–वे सब!

प्रकृति के पंच तत्वों के बारे में हम जानते हैं–आयुर्वेद का सार इन तत्वों को आधार बनाकर रोग निदान करते आया है। क्या हम अपने शरीर के बारे में कह सकते हैं कि हमारा आकाश तत्व कुपित हो चला है, अग्नि दोष उत्पन्न हो रहा है। वे कहां हैं हमारे शरीर में– हमें ज्ञात नहीं। ये सब विरोधी तत्व हैं–पर हमें ज्ञात नहीं। क्योंकि वे सब अद्वैत की स्थिति में हैं और संभवतः जीवन–शक्ति (व्हाइटल फोर्स) नामक चीज ने उन्हें बांध कर रखा है। उनमें एक का भी बैलेंस बिगड़ने पर हमारा स्वास्थ नष्ट हो सकता है।

अर्थात इस जगत में अद्वैत की महत्ता है चाहे वह एक भाव हो, स्थिति हो या विचार!

शंकर के अद्वैत दर्शन को हमने सुना–पढ़ा है। जब मध्य युग में बौद्ध धर्म के हजारों मार्ग हो गये और संभवतः अधिकांश अपने लक्ष्य से भटक गये थे तब अद्वैत दर्शन की स्थापना एक महत्वपूर्ण एतिहासिक घटना सिद्ध हुई। शंकर ने अद्वैत दर्शन द्वारा ये स्थापित करने का प्रयास किया कि जो जीव–जगत, आत्मा–परमात्मा, प्रकृति–पुरूष, ब्रह्मा और ब्रह्माण्ड अलग अलग प्रतीत होते हैं–असल में एक ही हैं। भेद का कारण माया अर्थात अज्ञानता है। हमारी अल्प दृष्टि है। ज्ञान होते ही यह भेद मिट जाता है और ज्ञाता और ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है।

हम किसे जानें ? यह विषय क्या है जो जानने योग्य है ? और कैसे जाना जाये ?

समस्त विश्लेषण के बाद भ्रम या मायाजाल खत्म होते ही हमें ज्ञात होता है कि वह जो बाहर की 'वस्तु' थी, विषय था, वह तो मेरे भीतर है।

और यह अद्वैत की स्थिति है। संसार के समस्त तत्वों को गिनना, गूंथना हमने बंद कर दिया और मूल स्वभाव, इसेंस / सार है उस पर टिक गये। इसी स्थिति को कबीर ने कई तरह से व्यक्त किया है। ''घूंघट के पट खोल तोहे पिया मिलेंगे''– (यानी माया का पर्दा हटाओ।) कस्तूरी कुण्डली बसै, जो बाहर वो भीतर, इत्यादि।

कहते हैं शंकर को इस अद्वैत की शिक्षा एक चाण्डाल ने दी थी। जब शंकर साधनारत थे, सत्य की तलाश में थे–एक बार उनके मार्ग में चाण्डाल आ गया। शंकर ने उसे परे हटने को कहा, चाण्डाल ने प्रतिप्रश्न किया–किसे दूर हटाना चाहते हो, इस शरीर को या उस आत्मा को जिससे यह संचालित है। मेरे शरीर के तत्व वही हैं और वही आत्मा प्रवाहित है जो समस्त प्राणियों का हेतु है।

कहते हैं शंकर को तत्काल अद्वैत बोध का भाव उत्पन्न हुआ और उस चाण्डाल को प्रणाम करते हुए अपना गुरू स्वीकार किया।

जब हम अद्वैत की बात करते हैं तो स्वतः ही द्वैत का अस्तित्व भी हमारे समक्ष प्रकट हो जाता है। हम जिस तरफ नजर उठाते हैं वहां भिन्नता, विरोधाभास अर्थात द्वैत नजर आता है। द्वैत अर्थात द्वंद! दिन–रात, सत्य–असत्य, जल–अग्नि, पृथ्वी–आकाश, मन–आत्मा, चित्त और विचार, सूक्ष्म–स्थूल, ठोस–तरल इत्यादि। शरीर बीमार है मगर मन मिठाई खाना चाहता है। कल स्कूल का इम्तीहान है मगर पुस्तक लेते ही हमें नींद आ जाती है। अर्थात संसार हमें कहीं और खींच

रहा है और सत्य कहीं और है। झूठ हमारे निकट है–एक नहीं हजार हैं दूर नहीं पास हैं जबकि सत्य का भान भी हमें नहीं होता। ढूंढो तो मिलता नहीं।

इस अद्वैत की स्थिति, भाव या विचार की हमारे सद्–साहित्य में क्या उपस्थिति है–प्रतिपाद्य यही है। साहित्य और दर्शन में बहुत कम फासला होता है। कबीर और कबीर से प्रेरित वर्णन, सूफीवाद इत्यादि बहुत हद तक अद्वैत के भाव को ही व्यक्त करते हैं। सूफी संत जहां खुदा को प्रेयसी या पत्नी मानकर इबादत करते हैं और 'खुद' तक पहुंचने का एक मार्ग, वहीं कबीर सीधी बात कहते नहीं हिचकते –लाली मेरे लाल की जित देखो तित् लाल.....।

जरा कथा साहित्य को मूल आधार बनाकर साहित्य में अद्वैत की मीमांसा / विश्लेषण करेंगे।

रचनाकार और रचना

रचनाकार और रचना के मध्य तीन तरह का अद्वैतबोध होता है– विचार के स्तर पर, भाव के स्तर पर और स्थिति के स्तर पर। इस परिवेशजन्य अद्वैत या सांस्कृतिक अद्वैत भी कहना सही होगा।

साहित्य में रचनाकार के वैचारिक अद्वैत की स्थिति तब बनती है जब उसे ज्ञात होता है कि इसकी रचना या चरित्र ठीक इसी विचार को सम्प्रेषित करने के लिए बना है। चाहे कथा में या साहित्य में उस विचार तक पहुंचने के पूर्व चरित्र चाहे जितने घात–प्रतिघात से गुजर चुका हो।

महाकाव्यों से उदाहरण देना ठीक रहेगा। महाभारत में कर्ण तमाम चेतावनियों के बाद भी अपना कवच–कुण्डल दान करने से पीछे नहीं रहता।

यथार्थवादी या जो भी नाम दें, कहा जा सकता है कि कर्ण की मूर्खता थी। वह भावुक था। अपने यश की खातिर बड़ी भूल कर बैठा। एक योद्धा जिसे ज्ञात है कि युद्ध निश्चित है और बड़े–बड़े प्रतिद्वन्दियों से भिड़ना है, यह सब जानते यह कैसी दानवीरता ?

पर क्या महाकवि मूर्ख है ? वे इस चरित्र के मार्फत संसार को क्या संदेश देना चाहते होंगे ?

ऊपर की सोच असत्य नहीं है, पर उसमें सत्य का वो महान भाव भी नहीं जिसके कारण कर्ण एक एतिहासिक पात्र बना।

दरअसल यही वैचारिक द्वंद है जो सबके (पाठकों/श्रोताओं) के मन में उठेगा। अद्वैत का रास्ता ही द्वैत से होकर गुजरता है। इसलिए एक अच्छा रचनाकार अपने पात्रों के द्वारा जितनी बारीकी से द्वैत या द्वंद का चित्रण /विश्लेषण करेगा, अद्वैत उतना ही शंकाओं से परे होगा।

यही साहित्य की जान भी है।

महाकवि ने कर्ण को सूर्य का उपासक और सूर्य का पुत्र होना बताया है। उपासना और उपास्य में भक्त और भगवान में द्वैत का रिश्ता नहीं होता। वे एक होते हैं। कर्ण न सिर्फ सूर्य का औरस पुत्र था, उनका उपासक भी था। सूर्य का काम समस्त जगत को प्रकाशित करना है। देना है। दान करना। वह दाता है अतः कर्ण ने बिना शंका या झिझक के अपना कवच–कुण्डल दान कर दिया।

ये वो घटना है जिसमें वृहत्तर और गहनतम् सत्य का अंश छिपा दिखता है और मूर्खता अथवा भावुकता के प्रश्न अर्थात उसकी दानशीलता के प्रति शंकाएं थी, उनका शमन हो जाता है।

दुर्योधन इस दानशीलता पर क्रोधित है। दुर्योधन का दृष्टिकोण अत्यंत यथार्थवादी है–वह लाभ–हानि, जय–पराजय से जोड़कर चीजें देखता है। उसकी दृष्टि उपासक और उपास्य तक नहीं पहुंचती। कर्ण अपने मित्र दुर्योधन को आश्वस्त करता है कि युद्ध ब्रह्मास्त्र से अथवा कवच–कुण्डल से नहीं लड़ा जाता। किलाबंदी कायर किया करते हैं।

कर्ण के अन्तःमन का विश्लेषण करें तो प्रतीत होता है कर्ण आजीवन अपनी प्रतिभा के साथ हुए भेदभाव को, भूला नहीं पाया था। एक तो उसे सूत–पुत्र कहकर हर उस मंच से वंचित किया गया जिसका वो हकदार था। चाहे द्रौपदी स्वयंवर हो या आमसभा के बीच युद्ध कौशल–कौरवों–पाण्डवों के बीच प्रदर्शित करने का मसला। हर जगह अर्जुन को तवज्जो दी जाती है–और वह अर्जुन को हर हाल में परास्त करना चाहता है। युद्धपूर्व मां कुंती को दिये वचन में भी कर्ण सभी को 'जीवन–दान' देने का वचन देता है पर अर्जुन को नहीं।

कारण ? संभवतः अर्जुन उसकी दृष्टि में उसक्रूर व्यवस्था का वो गंदा प्रतीक सा था जिसे वह (कर्ण) हर हाल में विध्वंस करना चाहता हो।

और वह इस युद्ध में शौर्य और समानता के सिद्धांत का वाहक बनता है। वह अर्जुन का मुकाबला किसी कवच–कुण्डल के सहारे नहीं करना चाहता। अपने शौर्य से प्राप्त अपनी शक्ति और सामर्थ्य से ही वह युद्ध करना चाहता है।

ऊपर जितनी भी स्थितिषं या तर्क बनते हैं वे सब कर्ण को चित्रित करने के सुंदर द्वैत रूप हैं। महाकथा में कर्ण के समस्त कार्यों–व्यापार को जानने–समझने के बाद ही ये तमाम द्वैत मिटते हैं और रचना, रचनाकार और पाठक–सभी एक अद्वैत की स्थिति में आते हैं जब हमारे भाव विचार और पात्रों की स्थितियां–सभी स्तर पर हम एकमत हो जाते हैं अर्थात् अद्वैत।

विचार से ही भाव उत्पन्न होते हैं और भाव से विचार!

वे एक दूसरे में घुले मिले हैं। कई बार उन्हें पृथक करना दुष्कर कार्य होता है। हर भाव या विचार एक निश्चित स्थिति या परिस्थिति में निर्मित होते हैं। यहां कुछ ऐसे परिस्थितिजन्य दृष्टांत रखे जा रहे हैं जिससे द्वैत–अद्वैत के विचार, भाव और परिस्थिति का संदर्भ स्पष्ट हो जायेगा।

एक किसान अपनी बैलगाड़ी से कहीं जा रहा है। रास्ता सुनसान है। कम ही लोग आते जाते हैं। अचानक उसकी गाड़ी कीचड़ में फंस जाती है। वह बैलों को हांक लगाता है मगर उसकी गाड़ी नहीं निकलती। किसान हनुमान जी का भक्त है। अपने साथ रखे मूर्ति या फोटो निकालकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगता है। हनुमान चालीसा पढ़ने लगता है। अब तो उसका संकट, संकट मोच ही दूर कर सकते हैं।

पर काफी देर तक कोई हल नहीं निकला। गाड़ी फंसी रही। तभी एक व्यक्ति वहां से गुजरा, उसने देखा और पूछ बैठा–यह जाप कैसा है ? किसान कहता है– हनुमान जी का आह्वान किया जा रहा है, ताकि उसका संकट टल सके।

वह व्यक्ति हंसता है और ललकारते हुए कहता है कि वह कैसा हनुमान भक्त है–वे पहाड़ उठा सकते हैं और तुम अपनी बैलगाड़ी नहीं ढो सकते। वह उस किसान को प्रेरित करता है, ललकारता है और स्वयं भी उसकी सहायता करता है। बैलगाड़ी कीचड़ से बाहर आ जाती है।

किसान उसे धन्यवाद देता है। प्रणाम करता है वह हनुमान जी को धन्यवाद प्रेषित करता है कि उन्हीं की प्रेरणा से यह महानुभाव उपस्थित हुए।

तीसरी स्थिति ये हो सकती है कि बैलगाड़ी कीचड़ में फंसते ही वह किसान जो हनुमान की शक्ति का उपासक है, स्वयं के भीतर हनुमान की शक्ति को महसूस करता है। स्वयं ही अदभ्य ऊर्जा से फंसी गाड़ी को निकाल लेता है। वह न प्रार्थना करता है न पूजा। ना ही किसी रूप में हनुमान उसके समक्ष प्रकट ही होते हैं। हनुमान की शक्ति यहां सूक्ष्म है–भाव और हनुमान का विचार ही अपना कार्य करता है। यहां पात्र स्वयंभू है– अपना रास्ता स्वयं ही निकाल लेने में समर्थ!

कथा एक ही है–मगर इसमें वर्णित तीन तरह के भाव –विचार या विचार भाव प्रकट होते हैं। परिस्थिति एक ही है। कथा एक। मगर आइये इनमें सूक्ष्म अंतर देखें और द्वैत–अद्वैत, रचना–रचनाकार, परिस्थिति और पाठक कब और कहां एकमत होकर ठहरते हैं। अर्थात उनमें अद्वैत का भाव उत्पन्न होता है।

यदि कथाकार कहानी का अंत इस तरह करता है जिसमें किसान के पूर्जा–प्रार्थना से हनुमान जी प्रकट होते हैं और समस्या का निदान करते हैं। पंद्रहवी शताब्दी का सगुण भक्ति आंदोलन की यह कथा आज के संदर्भ में कितनी प्रासंगिक हो सकती है ? पांच सौ साल पूर्व ऐसे विचार शायद पाठकों को विश्वसनीय लगते। मगर आज के संदर्भ में ? दूसरी अवधारणा के हिसाब से वह मददगार व्यक्ति कोई और नहीं हनुमान ही थे–रूप बदलकर। यह विचार प्रथम विचार से बहुत पृथक नहीं है। भक्त की पुकार पर भगवान उत्तर देते हैं। तर्क खारिज है–सिर्फ भाव की प्रबलता है। और अंतिम स्थिति को देखें, हनुमान का शक्ति–भाव यहां काम करता है। हनुमान सबके भीतर छिपे हैं। ऐसा भाव जिसका बोध हमें संकटकाल में ही होता है, ऐसे वक्त हम स्वयं ही आश्चर्यजनक कार्य कर जाते हैं। इस तीसरी स्थिति से हमारे आधुनिक पाठकों को आपत्ति होगी ? यहां कोई ईश्वर प्रकट नहीं होता सिर्फ उसकी शक्ति, उसके असीम भाव का संचरण हममें होता है। हम उनके मार्फत अपनी सोयी ऊर्जा जगाते हैं। सफल होते हैं।

उक्त तीनों स्थितियों के भाव में आज के पाठक कहां अद्वैत की स्थिति में होंगे–कहने की आवश्यकता नहीं।

एक दृष्टांत महाभारत से–

कुरूक्षेत्र में एक के बाद एक महावीर मारे जाते हैं। गांधारी अपने पुत्र दुर्योधन को अभयदान हेतु उसे उसके समक्ष नग्न स्थिति में प्रस्तुत होने कहती है। यहां;

कृष्ण को पता है कि गांधारी उसके शरीर को फौलादी करने वाली है, अतः छल से कृष्ण दुर्योधन के समक्ष प्रकट हो यह समझाते हैं कि उसे अपने जवान शरीर को नग्न स्थिति में किसी स्त्री के समक्ष नहीं पेश करना चाहिए–भले ही वह स्त्री उसकी माता हो।

कृष्ण की बात दुर्योधन मान लेता है। और मां के सामने लंगोट पहन कर पेश होता है।

दूसरी स्थिति, कृष्ण योगमाया शक्ति से सब देख–महसूस करते हैं और दूर से ही दुर्योधन के मस्तिष्क में भ्रम रख देते हैं और वह भूल कर बैठता है।

तीसरी स्थिति, कृष्ण अति मानव की तरह सब जानते समझते दुर्योधन के मन–मस्तिष्क से किसी तरह छेड़छाड़ नहीं करते। कोई विभ्रम नहीं रचते, वे जानते हैं कि दुर्योधन एक अहंकारी व संकीर्ण दायरे का प्राणी है, उसकी सोच में स्पष्टता नहीं, जब वह स्वयं को नग्न देखता है तो उसी रूप में माता के सामने प्रकट होने में स्वभाविक लज्जा महसूस करता है। वह अहं से संचालित है अतः दुनिया की स्वभाविक रीति से दुनियादारों जैसा सोचता है–ठीक वैसे ही जब नारायण और नारायणी सेना को चुनने की बात आती है–वह एक व्यक्ति (कृष्ण का) मूल्य नहीं आंक पाता। वह हिसाब लगाने लगता है। संसार के पीछे भागना, संसार की परिक्रमा

करना एक बात है और तटस्थ होकर संसार में टिके रहना, संसार को ही अपनी परिक्रमा करते देखना दूसरी बात। ऐसा योगी या ज्ञानी भाव दुर्योधन में विकसित नहीं था। अतः वह स्वयं को दुनियावी नजर से देखता है और भूल कर बैठता है। पुनः नग्नता अहंकारहीनता का प्रतीक है–स्वयं को तमाम खूबियों–खामियों के साथ–अर्थात् पूर्णतः नग्न होकर देखना और दिखाना सरल कार्य नहीं है, गोपियां जिस सहजता से कृष्ण के समक्ष नग्न होती है उसका भान तक उन्हें नहीं होता। यह प्रेम और सहजता है। दुर्योधन के चरित्र में न प्रेम था न सहजता। उसे तो लंगोट कसना ही था। अर्थात् अपनी बुराई छिपानी ही थी। एक बार विचार करें–आप रचनाकार हैं–और इसी कथा को लिख रहे हैं–क्या आप ये लिखना पसंद करेंगे कि भगवान दुर्योधन के सामने प्रकट होकर छलावा कर देते हैं।

आपत्ति–ईश्वर या भगवानवाद की मान्यता स्वीकारने का अर्थ है कि ईश्वर इतना सबकुछ कर सकता था तो महाभारत युद्व ही क्यों होने दिया ?

–संसार को ईश्वर ने बनाया तो क्या ईश्वर अपूर्ण है कि उसकी दुनिया भी अपूर्ण बनी इसलिए ईश्वर को अपनी 'भूल' ठीक करने के लिए अवतार लेना पड़ता है।

और अनगिनत तर्क दिये जा सकते हैं, साहित्य का कुरूक्षेत्र तर्क सम्मत 'पोएटिक जस्टिस' से परिपूर्ण होना चाहिए, महज सत्रहवीं सदी की कोरी भावुकता सम्पन्न नहीं।

दूसरी स्थिति में योग–माया या हिप्नोटिज्म के जरिये कृष्ण दुर्योधन के मन–मस्तिष्क में संचारित करते हैं।

तर्क है–दुर्योधन एक योद्वा बल्कि महायोद्वा था जो अपने मस्तिष्क को नियंत्रित कर सकता था। वह जल समाधि का विशेषज्ञ था। कृष्ण अपने मस्तिष्क से ये सब कर सकते थे तो उन्हें और भी बहुत कुछ करना चाहिए था। कहने की आवश्यकता नहीं।

हमारे मस्तिष्क को यह मत स्वीकार नहीं। अब तीसरी स्थिति पर विचार करें जो मानव मन के चेतन–अवचेतन रहस्य को समझने का प्रयास करता है। इस स्थिति में,

कृष्ण का अतिमानवीय या ईश्वरीय रूप तटस्थ रहता है–वह जीवों के कार्य व्यवहार में बिना कारण कोई हस्तक्षेप नहीं करते। वे मानवीय स्वतंत्रता, जीवों की समानता को अनदेखी नहीं करते–सम्मान से देखते हैं इसलिए वे अतिमानव हैं। अश्वस्थामा की मणि हासिल करते हुए वे सिर्फ उसकी योग्यता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं, उसके किये कृत्य को दूर तक देखते हैं।

अब आप स्वयं विचार करें कि एक रचना रचनाकार किस युग में जी रहा है जब वह अपनी रचना व पाठकों से एकाकार हो सके, अर्थात अद्वैत की स्थिति में आ सके–भाव, विचार सभी स्थितियों में।

––––––––––

रचनाकार और पाठक

चाहे वह कैसा भी रचनाकार हो किसके लिए लिखता है–पाठकों के लिए। इसमें कोई दो मत नहीं।

व्यास जी महाभारत (जय–विजय वास्तविक नाम) की रचना करने के पूर्व गणेश जी का आह्वान करते हैं। गणेश जी बुद्वि–विवेक के प्रतीक हैं। इनका काम व्यास जी द्वारा प्रस्तुत कथा–व्यथा या भावों या विचारों को लिपिबद्व करने का था। इस प्रतीक का सीधा अर्थ यही निकलता है कि भाव–विचार, कथा–व्यथा बेहिसाब प्रवाहित हो सकते हैं जब रचनाकार रचनारत रहता है। उसे गार्ड की आवश्यकता होती है, हरे–पीले या लाल रंग से सचेत करने की। बुद्वि–विवेक का यही काम है।

गणेश जी कथा प्रवाह को नियंत्रित ही नहीं करते वरन वे पहले पाठक भी होते हैं। सच तो ये है कि हर रचनाकार जब रचनारत रहता है– अपने भीतर के गणेश को जागृत करता है। वह ''किसी को'' कथा सुनाता, बताता, या दिखाता है। और कोई और नहीं वो अदृश्य पाठक हैं जो अगणित हैं। विभिन्न ज्ञान–तल और सांस्कृतिक विरासत से ताल्लुक रखते हैं। पर लेखक जो भाषा चुनता है, पात्र चुनता है, विचार रखता है, वातावरण प्रस्तुत करता है वह निश्चित ही 'एक' संस्कृति से संबंधित होते हैं। क्या आप सोच सकते हैं कि हिन्दी का लेखक कहानी तो लिखेगा रमऊ और खेदू की, और उसकी अपील होगी न्यूयार्क के पाठकों की! खेदू आकाश में बादल देखकर नाचता है–गीत गाने लगता है–क्यों ? इसका कारण बताने की आवश्यकता नहीं मगर उत्तरी यूरोप के देशों के पाठकों को बताना पड़ेगा वह क्यों बादल देखकर झूम रहा है, वहां तो बादल मृत्यु–शोक उत्पन्न करता है। अतः यहां स्वभाविक द्वैत की स्थिति होगी क्योंकि साहित्य मूलतः अपनी मिट्टी, अपने आसमान, अपने लोगों के लिए अपनी भाषा में ही रचा–बुना जा सकता है।

इसका ये अर्थ नहीं है कि एक साहित्यिक रचना में यूनिवर्सल अपील नहीं होती। होती है, इसलिए हमारी रचनाएं बाहर और बाहर की रचनाएं हमारे यहां पढ़ी जाती हैं। मगर उसमें साहित्य का अंश जो जमीनी होता है–वे सब क्षत हो जाते हैं। अथवा अनुवादक ऐसा हो कि मूल कथा को पूरी तरह अपने परिवेश में फिट कर दे। ये प्रसंग अवांतर हैं–अर्थात साहित्यिक अनुवाद से जुड़ा है पर प्रसंगवश चर्चा करनी पड़ी। यही बताने का प्रयास है कि यहां पारिस्थितिक या सांस्कृतिक द्वैत–बोध उत्पन्न हो जाता है।

एक सच्ची घटना का प्रसंग उल्लेखनीय है–

फिल्म मदर इंडिया को आस्कर के लिए नॉमिनेट किया गया था, मगर फिल्म पुरूस्कृत नहीं हो पाई। कारण ? ऑस्कर समिति के सदस्यों को ये बात नहीं समझ आ रही थी कि वो युवा स्त्री जिसका पति लापता था वर्षों से और वह स्त्री अपने को सुहागन समझते हुए अपने मांग में सिंदूर लगाती है। वह प्रतीक्षारत है। गांव का सम्पन्न महाजन उस स्त्री के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है मगर –जैसा कि भारतीय स्त्री की कहानी है–वह अपनी गरिमा व सदियों की मर्यादा की रक्षा करते हुए उस महाजन के प्रस्ताव को ठुकराती है।

एक गंवार से गंवार पाठक इस पर शंका अथवा सवाल नहीं करेगा–क्योंकि वह यहां सांस्कृतिक/स्थितिक अद्वैत (भाव–विचार) की स्थिति में वह जानता है कि वह स्त्री ऐसा क्यों कर रही है बल्कि यही अपेक्षा भी उसकी है। पर हमारी विरासत से अनभिज्ञ ऑस्कर के विद्वान द्वैत की स्थिति में रहते हैं–उन्हें ये समझ ही नहीं आता कि वह स्त्री इतना बढ़िया 'पैकेज' क्यों ठुकराती है।

फिलहाल अपने मुद्दे पर सीधा आते हैं।

बात रचनाकार और पाठक की हो रही थी। ऊपर के उदाहरण से एक प्रसंग जो अपने लोगों के लिए अद्वैत की स्थिति उत्पन्न करता है–कैसे बाहर या भिन्न संस्कृति के कारण वह न सिर्फ 'नासमझी' की स्थिति में आ जाते हैं, यह देखने लायक हैं।

यहां मूल सवाल है जब रचनाकार अपनी भाषा अपनी मिट्टी का प्रयोग करते हुए भी अपने पाठकों के बीच नहीं पैठ जमा पाता।

इसके कई कारण हो सकते हैं जिसमें से एक ये भी है कि कबीर अपने समय में नहीं समझे गये।। उन्हें ठीक से समझने में सैकड़ों साल लगे। कबीर निश्चित ही अपने समय के बहुत आगे थे–आज भी वे चुनौती हैं। उसी तरह एक रचनाकार अपने समय से बहुत पीछे हो सकता है।

उक्त कारणों के अतिरिक्त एक लेखक अपने पाठकों से 'एका' इसलिए नहीं होता कि ऊपर दिये गये गणेश जी के दृष्टांत में अकसर ही वह असफल हो जाता है। अपनी भावनात्मक प्रवाह, आत्मप्रलाप को खींचता और फैलाता जाता है बगैर बुद्वि, विवेक अथवा कलात्मक नियंत्रण के। ऐसे अधिकांश लेखक हैं जो पाठकों से दूर हैं। द्वैत की स्थिति में हैं। उनकी भावनात्मक–स्फीती से पाठकों में कोई रूचि नहीं।

ऐसी रचना रचनाकार बहुतायत हैं। वे अपनी रचना पर कैंची चलाना नहीं चाहते। उन्होंने जो लिखा है वह उनके दिल की सच्चाई है–सो कैसे काटे। रचना 'कट या पेस्ट' नहीं होती। चाहे आपकी रचना क्यों न हू–ब–हू आपकी हो, उसे उसी रूप में कट–पेस्ट को कोई पसंद नहीं करेगा। अद्वैत की स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। सवाल है –रचना पाठकों को कितनी विश्वसनीय लग रही है–भले ही रचनाकार ने उसे भोगा या देखा नहीं। कला एवं साहित्य विश्वास दिलाने की कला है। आपकी भावना, आपकी सच्चाई सब सच है–मगर उसके प्रस्तुतिकरण में पाठक कितने करीब हो पाते हैं–या कि आपके शब्द–शब्द समा जाते हैं। या ऊपर ही ऊपर छूकर चले जाते हैं, उलट–पलटकर छोड़ देते हैं।

रचनाकार को अवश्य ही अपने भीतर के पाठक को जागृत करना चाहिए। इस तथ्य को यदि मान्य न करें तो इसे साहित्य का सिद्धांत मान्य करने में हिचक नहीं होनी चाहिए कि एक रचनाकार पहले एक सफल और सजग पाठक होता है। अर्थात यदि आपके भीतर एक सजग पाठक का अस्तित्व नहीं है तो आप रचनाकार नहीं।

इसका फैसला तो आप ही को करना होगा।

––––

अभी हम रचनाकार बनाम पाठक के सम्बंधों की तलाश कर रहे थे। जी हां, तलाश, जो कभी पूरी नहीं होती, कभी पूरी तरह हाथ नहीं लगती फिर भी इसकी खोज होती रहती है–होनी भी चाहिए।

रचनाकर बनाम पाठक की जगह अब हम पाठक बनाम रचनाकार की खोज–खबर लेंगे। यानी रचनाकार के भीतर एक पाठक नहीं बल्कि एक पाठक के भीतर रचनाकार कैसे छिपा बैठा है। इस दुनिया को ईश्वर ने नहीं, बल्कि दुनिया ने ईश्वर को बनाया है।

इसे स्वीकार करते ही कि पाठक अस्तित्व है और मूल में है। वही केन्द्र है और रचनाकार, समीक्षक, आलोचक, संपादक–ये सब के सब सीमांकित क्षेत्र, अर्थात बाहरी बॉडी लाइन के विषय बन जाते हैं। आपका दृष्टिकोण चीजों को देखने का बदल जाता है। पूरा का पूरा 360 डिगरी! पूरी कहानी ही एंटी क्लाइमेक्स की स्थिति में आ जाती है।

जरा सोचिए, दिन–रात और सदियों से प्रभु–प्रभु के गुण गानेवाला ये विचार करने लगता है कि वह एक वो अंश है जिसने उस परम शक्तिशाली प्रभु को बनाया।

इस स्थिति को स्वीकार करना असंभव है। यह प्रसंग दूसरा है। फिलहाल साहित्य में इसे स्वीकार करने में कि पाठक ही केन्द्र है–शेष अभिकेन्द्र–विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इस केन्द्र को अर्थात पाठक को चाहिए क्या ?

–एक व्यक्ति जो कि रचनाकार है उसके अहं भरे विचार और बड़बड़ाहट ?

–उस रचनाकार की एक विचार–प्रधान गैर–कलात्मक

रचना जिसमें सिर्फ एक खास 'विचार' का प्रचार का किया गया हो ?

–उस रचनाकार की अच्छाइयों का पहाड़ मानों इस संसार का दुःख उसने ही उठा लिया हो–वह सबसे अच्छा, बाकि सब फीके...। (मूर्खतापूर्ण अहंकार का प्रदर्शन) कि इस सिस्टम ने इस दुनिया ने उसे दुःख ही दुःख दिया है।

–एक युवा प्रेमियों का भावपूर्ण प्रवाह जिसमें ये दर्शाया होता है कि उनसे अधिक प्यार करने वाला कोई धरती पर मौजूद नहीं। हाय! उसका प्रिय बे–वफा निकला! अर्थात एक मूर्खता भरा बेतुका, बचपना लिए भावुकतापूर्ण प्रवाह बिना किसी रोक टोक के।

–उसी तरह कोई रचना सिर्फ कला या भाषा के दम पर या रचनाकर के दम पर नहीं खींची जा सकती। आपकी रचना में कोई कलात्मक कमी नहीं, फिर भी वो बेजान हो सकती है। उसी तरह खूब सधी भाषा में लिखी होने के बाद भी रचना पाठकों के लिए द्वैत की स्थिति में हो सकती है।

इसके अतिरिक्त और भी कई संभावनाएं हो सकती हैं–जब एक रचनाकार अपने पाठकों के लिए ऐसा 'माल' परोसता है। सार रूप में देखें तो पाठक जो कि यहां केन्द्र में है–उसे उसका रचनाकार पसंद नहीं आया। पूरा हजम नहीं हुआ। वह नहीं जानता क्यों। गौर से देखें तो हजारों किताबें जो दुनिया में रोज छपती हैं, लाखों रचनाएं जो रचनाकार लिखते हैं–उनमें अधिकांश में ऊपर दर्शित 'रोग' की संभावना अधिक होती हैं, बल्कि अधिकांशतः ये ऐसी रोगग्रस्त रचनाएं हैं जिनकी जीवन–शक्ति अत्यंत क्षीण होती हैं। वे अल्प जीवन जीती हैं। प्रारंभ से ही वे मृत–सी होती हैं।

इसका मूल कारण क्या है ?

क्यों कुछ महाकवियों की रचनाएं कभी नहीं मरती ?

हम कहते हैं इनमें ये महान है–वो महान है। बस महान ही महान है।

महानता सच है मगर इस महानता के पीछे का सच क्या है ?

अगर एक शब्द में कहा जाये तो वह शब्द है–सत्य!

रचना में सत्य का दर्शन! रचना में सत्य के प्रति आग्रह!

रचना में सत्य का प्रकटीकरण!

ऑटोबायोग्राफी तो रचनाकार अपने को ही केन्द्रित कर लिखता है। हिन्दी साहित्य में कितनी ऑटोबायोग्राफिक रचनाएं मान्य हैं ? पांच अंगुलियों में गिनाने लायक भी नहीं, जबकि हजारों की संख्या में लिखे गये होंगे।

वजह ?

निजी भोक्ता होकर भी उसके निजी यर्थात् में किसी की दिलचस्पी क्यों नहीं उत्पन्न हो सकी ? जो लोग भोगा हुआ यथार्थ की माला जपते हैं वे क्या उत्तर देंगे ?

उत्तर है उस पाठक की नापसंदगी जो आपके शब्दों में सत्य चाहता है, आपका बड़बोलापन तो कतई नहीं। हुजूर यदि आपमें सत्य का अंश है और उसके प्रति आग्रह भी, सत्य का सम्मान भी तो आपकी आप–बीती, जगत–बीती बन जायेगी। इस सच को समझे बगैर एक निजी अनुभव ऐसे ही सार्वजनिक अनुभव नहीं बन जायेगा! आपके अहं का फैलाव कितना भी घना हो, हल्की सत्य की वायु पड़ते ही कोहरा गायब!

ऐसा क्यों है कि एक रचनाकार न अपने पाठक को समझ पाता है न उसके सत्य को। समस्या यही है।

पाठक उस सत्य की तरह है जो सिर्फ है, उसे ज्ञात है। सत्य आपना परिचय नहीं देता। अपना विज्ञापन नहीं करता। सत्य अपनी वकालत ना किसी वकील से करवाता है–ना वह स्वयं अपना बचाव! वह स्वयंभू है। सिर्फ वही है जो मूल है। उसका होना ही पर्याप्त है।

जाहिर सी बात है कि इस खामोश से रहने वाले सत्य को देखने–परखने में रचनाकार चूक जाता है। उसे तो आत्मदंभ से फुरसत नहीं–या तो वह या उसका पात्र बहुत दुखी हैं–दुनिया के मारे, या बहुत खुश या बहुत महान.....।

ये सारे पात्र रचनाकार महोदय के मानसपुत्र हैं–अस्पष्ट, मूर्ख और अहंकारी!

सत्य इतना सरल होता तो सभी देख लेते, आप तो लिखने लगे, छपने लगे और रचनाकार हो गये। बंधुवर! बहस कॉलम में आपका स्वागत है, एक बार विचार तो कीजिए कि सत्य होता क्या है, आपके पाठकों से उसका क्या संबंध! आपकी रचना में सत्य कितना और दम्भ कितना है ?

रचना, सत्य, पाठक ये शब्द तो दाल–भात और पापड़ की तरह घिसे–पिटे हैं। मिलाओ और खाओ। हिन्दी के रचनाकार! क्या आप भी वैसा ही सोचते हैं–जनाब! ये पाव भर का गिजा है मगर हजम करके तो बताइये!

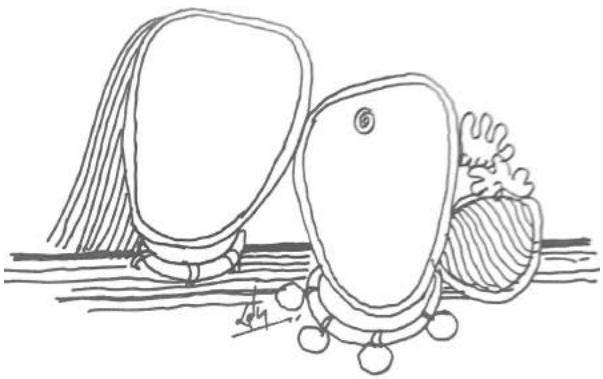

एक मुलाकात : हरिहर वैष्णव

'एक मुलाकात' व 'परिचय' श्रृंखला में इस पिछड़े क्षेत्र से जुड़े हुए और क्षेत्र के लिए रचनात्मक योगदान करने वाले व्यक्ति के साथ बातचीत, उनकी रचनाओं की समीक्षा, उनकी रचनाएं और उनके फोटोग्राफ अपने पाठकों के साथ साझा करेंगे।

श्री हरिहर वैष्णव जी वो नाम है बस्तर संभाग के कोण्डागांव जिले का, जो जंगल के एक पुष्प की तरह चुपचाप अपनी खूबसूरती और खुशबू बिखेरता रहता है, जो एक संत की मानिंद दुनिया की मंगल कामना में चुपचाप साधनारत रहता है। धीरे धीरे उनकी साधना का फल दुनिया के सामने आता जाता है। बस्तर क्षेत्र भी दुनिया की आपाधापी से अछूता नहीं है। यहां भी विकास ने लोक के अस्तित्व को चुनौती दी है। अब यहां के मूल निवासी अपने रीति रिवाजों के बचाव के लिए संघर्षरत हैं। विकास की इस घिसावट में उनके सांस्कृतिक प्रतीक ही मात्र रह जायेंगे अगर ऐसा ही दौर चलता रहा तो। उनके खेतों के गीत, मृत्यु और शोक के गीत, जन्म और विवाह के गीत, जीवन के प्रत्येक विशिष्ट अवसर के गीत तथा संस्कार विलुप्त हो जाने का खतरा मंडरा रहा है। जंगल पर ऊपर की सरकार और भीतर की सरकार के कब्जे ने उन्हें जल, जंगल और जमीन के जुड़ाव से वंचित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। धर्मान्तरण आदि ने भी उन्हें संस्कृति से दूर करने में महती भूमिका निभाई है। ऐसे कठिन दौर का सामना कर रहे हैं आदरणीय हरिहर वैष्णव जी। उन्होंने इस संस्कृति के संरक्षण को बचाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है। आम जीवन से हटकर सुख सुविधाओं को तिलांजलि देकर वे दिनरात साध नारत रहते हैं। ऐसे वक्त उनका साथी होता है मात्र उनका कंप्यूटर। अपनी साधना से प्राप्त रस को वे इसी श्रेष्ठ पात्र कंप्यूटर में एकत्र करते जाते हैं। उनके द्वारा रचित लोक साहित्य मात्र किताबी ताका झांकी नहीं है उन्होंने अपने जीवन को लोक में समीधा बनाकर खुद को समर्पित किया है। उस यज्ञ में शामिल होकर लोक जीवन को जाना है। वे आदिम जीवन जीकर बस्तर के मूल निवासियों के बीच से उनकी संस्कृति को शब्द रूप दिया है। वे स्वयं ही उनके बीच जाकर रात दिन उनके साथ रह कर उनके खेतों में कटाई –बुनाई में शामिल होकर, मृत्यु–विवाह में शामिल होकर, उनके त्यौहारों में शामिल होकर उनके संस्कारों का बारीकी से अध्ययन किया है। उन संस्कारों के एक एक क्षण को शब्दरूप प्रदान किया है। उन्हें हम बस्तर के आदिम जीवन का एनसाइक्लोपीडिया मान सकते हैं। उन्होंने बस्तर के लोक जीवन और लोक साहित्य को लिपिबद्ध तो किया ही किया है साथ ही साथ हिन्दी साहित्य में भी अपनी रचना क्षमता से धाक जमाई है। वे लोक गायक हैं, लोकवादक हैं, लोक संस्कृति के चिन्हों के सर्जक हैं। उनसे मिलकर रोमांचित होना सहज बात है। सबसे बड़ी बात वे सादा जीवन उच्च विचार की बात ही नहीं करते बल्कि अपने जीवन में उतारते भी हैं। अपने एक एक क्षण का उपयोग करते हैं। व्यर्थ की बातों में अपना समय गंवाना उन्हें गंवारा नहीं। सम्मान और भीड़–भाड़ से दूर रचनारत रहना उनका स्वभाव है। मैंने उनसे लोक साहित्य से जुड़े विभिन्न संदर्भों पर बात की और उन्होंने बेबाक जवाब दिया। आईये हम सभी उनके विचार जानकर उन्हें समझने का प्रयास करते हैं। उनके दृष्टिकोण से बातों को समझने का प्रयास करें।

***सनत**–किसी नये नवेले साहित्यकार को कार्यक्रम का मुख्य अतिथि बनाने से उसका फायदा है या नुकसान?*

[illegible]

***सनत**–किसी 'पहुंच' वाले को साहित्यिक कार्यक्रम की आसंदी देना कहां तक उचित है?*

[illegible]

***सनत**–व्यवहार में और रचित साहित्य में कितने प्रतिशत का अंतर जायज है?*

[illegible]

***सनत**–किसी भी साहित्यिक पत्रिका के संपादक की योग्यता क्या होनी चाहिए?*

[illegible]

***सनत**–साहित्यकार होने के लिए व्यक्ति को कितना पढ़ा लिखा होना चाहिए?*

[illegible]

***सनत**–सामाजिक असंतुलन के लिए लेखक जिम्मेदार होता है या फिर संपादक?*

[illegible]

***सनत**–साहित्यकार का बेटा साहित्यकार ही बने क्या ऐसा जरूरी है?*

[illegible]

***सनत**–साहित्यिक सफलता के मायने क्या होते हैं?*

[illegible]

***सनत**–साहित्यकार अपने जीवन में क्या करता है और वह क्या रचता है, क्या दोनों में तारतम्य होना जरूरी है?*

[illegible]

***सनत**–ग़ज़लें अब अपने विषय बदल रहीं हैं, पहले और आज भी शराब व शवाब में डूबी रहती हैं; क्या परिवर्तन जरूरी है? और यह परिवर्तन समय के कारण है या फिर ग़ज़लकारों की*

कमजोरी है?

[illegible]–[illegible]

सनत–*मंचीय कवि और साहित्यिक कवि में क्या अंतर है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*व्यंग्य और हास्य में क्या अंतर है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*क्या वास्तव में सफल महिला साहित्यकार होने के लिए परिवार नामक संस्था से दूर रहना आवश्यक है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*हर सफल व्यक्ति के पीछे उसकी पत्नी होती है कैसा होता है उसका योगदान?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*हर सफल व्यक्ति के पीछे उसकी पत्नी होती है तो सफल महिला साहित्यकार के पीछे कौन होता है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*संपादकीय के विषय क्या होने चाहिए, समसामायिक घटनाएं, साहित्य से संबंधित या फिर सामाजिक समस्याओं पर?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*किसी भी पत्रिका में छपने के लिए रचनाएं भेजना कहां तक उचित है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*रचनाएं स्वयं होकर भेजना चाहिए या फिर पत्रिका के संपादक के द्वारा मांगे जाने पर ही भेजना चाहिए?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*साहित्यिक परिदृश्य में आने के लिए शहरों में रहने वाले साहित्यकारों को ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले साहित्यकारों से ज्यादा मौका मिलता है, क्या यह सच है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*वर्तमान व्यंग्य रचनाएं हास्य की श्रेणी में क्यों आ रही हैं?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*कहानी, व्यंग्य, कविता तीनों में कौन शक्तिशाली है? किसकी मारक क्षमता ज्यादा है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*नये साहित्यकारों को सृजन के कैसे प्रयास करने चाहिए?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*जब समय के साथ लेखन में सुधार हो जाता है तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि उनकी शैली फलां थी?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*क्या उम्र के साथ लेखन में परिपक्वता आती है, या ये जुमला यूं ही उछाला गया है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*साहित्यिक कार्यक्रमों में होने वाले खर्चों की पूर्ति कैसे हो? सरकारी मदद से अथवा आपसी कलेक्शन से?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*गोष्ठियों का स्वरूप कैसा होना चाहिए?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*साहित्य का किन कारणों से अवमूल्यन हो रहा है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*लगातार पुस्तकें छपवाकर आने वाले लेखक साहित्य का भला कर सकते हैं? या फिर बुरा?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*मात्र कविता लिखना साहित्य है या फिर अन्य विधाओं से जुड़ना चाहिए?*

[illegible]–[illegible]

***सनत**–कठिन शब्दों में कविताएं बुनने का दौर है अथवा खत्म हो गया है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–मंच पर किन्हें स्थान देना चाहिए, ज्ञाता, साहित्य से जुड़े बुजुर्ग, अथवा नेता, अफसर को?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–आप साहित्य की किस विधा को अपने लिए अनुकूल मानते हैं? क्या उसी विधा ने आपकी पहचान बनायी है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–क्या वर्तमान परिवेश साहित्य के अनुकूल है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्य में क्या दुविधायें है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–क्या साहित्य में भी टोटके होते हैं?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–क्या साहित्य में गॉडफादर का होना जरूरी है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्य का वर्तमान मूल्यांकन क्या कहता है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्य के कब तक जिन्दा रहने की संभावना है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्य की वर्तमान परिपाटी में 'तू मेरी थपथपा, मैं तेरी थपथपाता हूं' कहां तक सही है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–क्या साहित्य में सफलता के लिए किसी विशेष गुट से जुड़ा होना जरूरी है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्य में लगातार छपने वाला ही साहित्य सुधि है या गुमनाम लेखक?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–वर्तमान साहित्य काल्पनिक है या वास्तविक?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–वर्तमान साहित्य वर्तमान का सही ढंग से दस्तावेजीकरण कर पा रहा है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–सफल साहित्यकार की परिभाषा क्या है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–सदा ही मुख्य अतिथि, विशिष्ट अतिथि बनने वाला ही सच्चा साहित्यकार है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्य की सफलता क्या है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्य लिखा किसके लिए जाता है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–एक ओर तो साहित्य से समाज को बदलने के दावे किये जाते हैं और दूसरी ओर प्रकाशन, संपादन और लेखन से जुड़े बहुत से लोगों का चरित्र संदिग्ध होता जा रहा है; ये कैसा साहित्यिक प्रभाव है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–पुस्तकें छपना साहित्यकार का दर्जा किस तरह बढ़ाता है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्यिक आयोजन की रूपरेखा कैसी होनी चाहिए?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–साहित्यिक वरिष्ठता उम्र होती है या फिर उनका रचित साहित्य होता है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–सुविधाओं के बीच रहकर जो साहित्य रचा जाता है, क्या वह आम लोगों का साहित्य हो सकता है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–अध्ययन से साहित्य रचा जाता है या फिर ईश्वर प्रदत्त होता है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–पुराने लोगों द्वारा रचित साहित्य पढ़ने से किस तरह ज्ञान वृद्धि होती है?*

[illegible]–[illegible]★

***सनत**–पुराने साहित्यकारों का नये साहित्यकारों के प्रति क्या योगदान हो सकता है?*

[illegible]–[illegible]★

सनत–*पत्रिका/ पुस्तक विमोचन के पश्चात उसे आमंत्रित लोगों के बीच मुफ्त में बांटना उचित है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*साहित्यकार को कम से कम कितनी पत्रिकाओं का सदस्य होना चाहिए?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*साहित्यिक योगदान में मात्र रचना ही होता है या फिर पढ़ना, पढ़ाना?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*हम साहित्य के विस्तार में किस तरह से योगदान दे सकते हैं?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*हिन्दी का पाठक पत्रिका / पुस्तक क्यों नहीं खरीदता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि उसकी पसंद के विपरित सामग्री जबरन दी जा रही है ? मोटे उपन्यास जिन्हें लुगदी साहित्य कहा जाता है वे तो बहुत बिकते हैं।*

[illegible]–[illegible]

सनत–*एक ही तरह का विमर्श एक ही तरह की सामग्री परोसे जाने के कारण पाठक विमुख हुआ है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों की कुछ ज्यादा ही विद्वता ने लोगों को साहित्य से दूर किया है?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*पत्रिका कैसे बेचें ? कैसे प्रकाशक अपनी पत्रिका का खर्च निकाले ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*क्या पत्रिका बेचने वाले पत्रिका का पैसा नहीं भेजते हैं ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*कहीं ऐसा तो नहीं कि हमने साहित्यकारों को यानी लेखकों को ही पाठक मान लिया है और उन्हें पत्रिका भेजते हैं इस कारण पाठक तक पहुंच नहीं पाते हैं ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*रचनाएं भेजने वाले ही पाठक हैं या फिर कोई और है ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*वास्तविक पाठक तक कैसे पहुंचे ? उन्हें अपनी से कैसे जोड़ें ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*वर्तमान हिन्दी साहित्य के परिदृश्य के बारे राय।*

[illegible]–[illegible]

सनत–*वर्तमान टीवी इंटरनेट मोबाइल युग में पुस्तक पठन अथवा पुस्तक प्रकाशन में आई चुनौतियां ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*क्या वर्तमान समाज राजनीति को मशाल दिखाने वाली विधा साहित्य विशेषकर हिन्दी साहित्य स्वयं संकटग्रस्त नहीं ? हाशिये पर नहीं ? स्वयं दलित नहीं ? यदि हां तो इस संकट के कारण व निबटने के उपाय ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*हिन्दी लेखन में पाठकों की समस्या। हिन्दी साहित्य आज के दौर में किस तरह पाठकों तक पहुंचे ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*क्या सोशल नेटवर्किंग, इंटरनेट या लेखकों / पाठकों का स्वयं का नेटवर्क न हो–हिन्दी साहित्य के प्रसार के लिए ?*

[illegible]–[illegible]

सनत–*हिंग्लिश के जमाने में अपने ही देश में किसी भारतीय अंग्रेजी लेखक को करोड़ों की रायल्टी मिलती है–क्या हिन्दी में ऐसे लेखक नहीं अथवा ये सारा मामला 'इंडिया' बनाम गरीब भारत के असमान विकास से जुड़ा है। हिन्दी लाचारों की भाषा है।*

[illegible]–[illegible]

सनत–*आज की इन परिस्थितियों का सामना करने लेखकों, पाठकों, संपादकों, आलोचकों प्रकाशकों को किस तरह करना चाहिए ? देश में साहित्यिक समाज सक्रिय है ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*आधुनिक हिन्दी साहित्य एजेण्डाबद्ध रहा है, सोद्देश्य, स्त्री एजेण्डा, दलित एजेण्डा, उत्तर उत्तर आधुनिकतावाद इत्यादि खांचे में फिट की गयी कहानियों का दौर रहा है—आज कल इंटरनेट से 'कट एण्ड पेस्ट' रचनाएं उत्तरआधुनिकता के नाम पर आ रही हैं—कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी रचनाएं बेजान, बेस्वाद होती हैं—क्या इस तरह के लेखन से आम पाठकों को जोड़ा जा सकता है ? ऐसा लेखन वाकई साहित्यिक लेखन कहलाने लायक है ? और इसने क्या साहित्य का भला किया है ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*पत्रिका में प्रोत्साहन देते हुए नये लेखकों की रचनाएं छापना पत्रिका का स्तर गिराना है या सेवा ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*एक ओर कहा जाता है कि साहित्यिक पुस्तक कोई नहीं पढ़ता साहित्य मर रहा है और दूसरी ओर नये साहित्यकार की भरमार से चिढ़ पैदा हो रही है—सच क्या है ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*मुंशी प्रेमचंद की कहानी कफन में दोनों पात्र सहज हैं या गढ़े हुए ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*वर्तमान में नया साहित्यकार कहां से साहित्य की शुरूआत करे ? यह प्रश्न कैसे हल हो कि वह वर्तमान साहित्यकारों को पढ़े स्थापित पुराने साहित्यकारों को पढ़े क्षेत्रीय को पढ़े लोक रचना पढ़े या फिर कुछ और ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*कहानी अच्छी लगने का कारण क्या होता है ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*पढ़ना जरूरी है परन्तु गॉड गिफटेड होता है या नहीं ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*साहित्य की सेवा तन मन धन से कैसे की जा सकती है ?*

[illegible]—[illegible]

सनत—*कहानी में क्या महत्वपूर्ण है भाषाशैली, कथ्य, संदेश एजेण्डा या फिर पाठक का मूड, अलग अलग बताने का कष्ट करें।*

[illegible]—[illegible]

सनत—*आलेख व कहानी में कैसे अंतर दिखता है उदाहरण के साथ बताने का कष्ट करें।*

[illegible]—[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सनत—*इस क्षेत्र के रचनाकारों का नाम जो योग्यता के बाद भी वे पीछे रह गये।*

[illegible]—[illegible]

सनत—*किनकी कहानी और कविता से प्रभावित है ?*

[illegible]—[illegible]

सनत–आपके समय के साहित्यकारों की सूची दीजिए।

[illegible]–[illegible]

सनत–रचनाओं को पुस्तक रूप में न लाने का कारण ?

[illegible]–[illegible]

सनत–कितनी रचनाएं और कौन कौन सी पुस्तक में छपी हैं ?

[illegible]–[illegible]

सनत–मार्क्सवादी लेखन और राष्ट्रवादी लेखन में क्या अंतर है ? क्या हम लिखते वक्त ये वाद दिमाग में रखकर लिखते हैं ? यदि हां है जवाब तो फिर लेखन को आत्मप्रेरित क्यों कहा जाता है ?

[illegible]–[illegible]

सनत–साहित्य की दशा और दिशा दिल्ली वाले तय करेंगे या फिर हमें अपनी मर्जी का लिखना चाहिए ?

[illegible]–[illegible]

सनत–अभी एक बात कही जाती है कि आधुनिक साहित्य रचा जाये वरना आपको, आपके लेखन को कोई नहीं पूछेगा, ये बात किस हद तक सही है ?

[illegible]–[illegible]

सनत–पत्रिका को मुफ्त में देने से साहित्य का विकास होता है या फिर हराश ?

[illegible]–[illegible]

सनत–साहित्यप्रेमी पत्रिका क्यों नहीं खरीदना चाहता है ? उसकी पहुंच से दूर है, महंगी है, उसके पसंद की नहीं है, या रूचि खत्म हो गई है ? सोशल मीडिया वाला पहलू छोड़ दें।

[illegible]–[illegible]

सनत–प्रगतिशीलता का मतलब क्या समझते हैं आप ?वर्तमान में औरतों के मुंह से औरतों की सेक्सकथा, दलितों के मुंह से दलित कथा या और कुछ ?

[illegible]–[illegible]

सनत–क्या साहित्य में भी ब्राहमणवाद आ गया है ? प्रगतिशील खेमा अन्य सभी की समीक्षा करना अपना पूर्णाधिकार मानता है।

[illegible]–[illegible]

सनत–समीक्षा को विधा के रूप में मान्यता देना मूल लेखकों की मेहनत पर पानी फेरना नहीं है ?

[illegible]–[illegible]

सनत–जब किसी रचनाकार पर केन्द्रित अंक प्रकाशित किया जाता है तो लोग ये क्यों मानकर चलते हैं कि पत्रिका ने उस रचनाकार से पैसा लेकर ही अंक छापा होगा ? ऐसा ही हो रहा है या फिर उस प्रश्न करने वाले का फ्रस्टेशन समझा जाये।

[illegible]–[illegible]

सनत–सम्मान देने वाली संस्था यदि किसी को सम्मान दे रही है तो क्या उसका आधार दूसरे लोग तय करेंगे ?

[illegible]–[illegible]

आदरणीय हरिहर जी आपने बड़े ही विस्तार से और हृदय से समस्त जिज्ञासाओं का समाधान किया। साथ ही साथ वर्तमान साहित्य के संबंध में अपने विचार रखे। निश्चय ही पाठकों के लिए उपयोगी साबित होंगे। बस्तर के साहित्यकारों को दिशा देने में सहायक होंगे। बस्तर पाति की ओर से आपको उज्जवल भविष्य की शुभकामनाएं। आप सदैव रचनाशील रहें। बहुत बहुत धन्यवाद।

[illegible]

हरिहर वैष्णव
सरगीपालपारा
कोण्डागांव, छ.ग.
मो.—7697174308

[illegible]

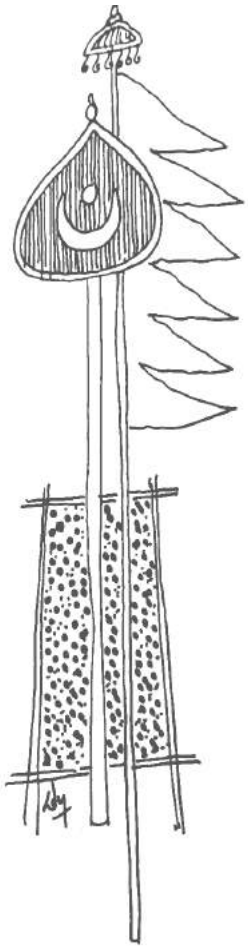

नियति की नियत

डॉ. आशीष कंधवे

संपादक
आधुनिक साहित्य
ए.डी. 94 डी,
शालीमार बाग,
दिल्ली–110088
मो. : 9811184393

aadhuniksahitya@gmail.com

प्रजातंत्र एक व्यापक शब्द है जिसकी सीमा का निर्धारण लगभग असंभव है। इसमें कोई शक नहीं है कि इसका मुख्य ध्येय जन–कल्याण में ही निहित होता है। प्रजातंत्र यानी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः' के मूल भाव पर आधारित है। प्रजातंत्र यानी 'लोकहित में जीवन साधना' लेकिन समकालीन परिस्थितियों का जब हम आकलन करते हैं तो ये दोनों ही सूत्र मिथ्या दिखाई पड़ते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के 65 वर्ष के बाद भी सर्वे भवन्तु सुखिनः, की बात स्वप्न ही प्रतीत होती है और जहाँ तक लोकहित में जीवन साधना का प्रश्न है तो इसे ऐसे कहें तो ज्यादा ठीक और सार्थक लगेगा कि लोकतंत्र यानी निजहित में सामाजिक जीवन के माध्यम से धन, बल का संधान। अब्राहम लिंकन के शब्दों में 'प्रजातंत्र/जनतंत्र/लोकतंत्र जनता के द्वारा बनाया गया जनता का शासन होता है।' बात बिल्कुल सही है। हमारे यहाँ शासन भी जनता का है फिर लोकहितकारी, जनहितकारी सरकार दिखाई क्यों नहीं पड़ती? ये कैसी विडंबना है? असल में समस्या तंत्र में नही है समस्या सोच में है, समस्या दिमाग में है। अब बात उठती है सोच में या दिमाग में क्या समस्या है। इसके लिए हमें अपने इतिहास को याद करना पड़ेगा। त्याग, बलिदान और ईमान की कसौटी पर कसा हुआ भारतीय परिवेश कैसे इतना स्वार्थी, निजहितकारी और दंभी हो गया।

दरअसल, पृथ्वीराज चौहान की मोहम्मद गौरी से पराजय को इस नये विकृत भारतीय समाज के बीजारोपण का काल कहा जा सकता है। वैदिक काल से लोकहितकारी परंपराओं का निर्वहन करने वाला समाज अपने ही उसूलों, आदर्शों की बलि चढ़ गया। पृथ्वीराज चौहान द्वारा अपने आदर्शों का पालन करना जैसे निहत्थे पर वार नहीं करना, हारे हुए राजा को भी राजा समझना आदि–आदि, प्रथम दृष्टि में तो यह कृत्य राष्ट्रहित के लिए आत्मघाती लगता है परन्तु असल में यह पृथ्वीराज को मिले सामाजिक और राजनीतिक संस्कार थे। जबकि दूसरी ओर (चाहे वह मोहम्मद गौरी हो या मुगल या अंग्रेज) रण विजय को ही संस्कार मानते थे और पराजय को तिरस्कार। पृथ्वीराज की हार को मैं इस आधुनिक भारत के प्रजातंत्र से इसलिए जोड़ने की कोशिश कर रहा हूँ क्योंकि यह वह काल था जब किसी शासक (राजा) का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में उसका शोषण आरंभ हुआ। सीधी बात करें तो यह आधुनिक भारतीय इतिहास में शासक; राजा के शोषण का भी आरंभिक काल था। एक राष्ट्रभक्त लोकहितकारी शासक को सार्वजनिक रूप से इस तरह प्रताड़ित और दंडित किया गया कि आम जन–मानस के हृदय में भय और आतंक का बीज फूलना–फलना आरंभ हो गया अर्थात मानसिक गुलामी की शुरुआत हो गयी। धीरे–धीरे भारत के राजतंत्र हारते या फिर दासता स्वीकार करते चले गये। मानसिक रूप से भयभीत और गुलाम मानसिकता लिए मुगलों/अंग्रेजों के दमन–शमण से होते हुए हम आज के लोकतांत्रिक परिदृश्य का आकलन करने की कोशिश कर रहे हैं। यानी लगभग 800–850 वर्षों की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक गुलामी का ऐसा असर हमारे मन–मस्तिष्क में बैठा हुआ है कि उसे 60–65 वर्षों में निकालकर बाहर फेंकना बहुत कठिन है, परन्तु असंभव नहीं। जैसे लम्बी बीमारी के बाद किसी मरीज के ठीक होने पर भी वह लम्बे समय तक मन में बैठे डर को बाहर नहीं निकाल पाता है, वैसे ही लम्बी गुलामी के बाद मिली आजादी के पश्चात् भी हम पूर्ण रूप से स्वतंत्र नही हो पाये हैं। इस लम्बी गुलामी का सबसे बड़ा दुष्परिणाम हमें यह देखने को मिल रहा है कि हमारे समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग उन शासकों के सहयोगी के रूप में काम करते–करते शोषण करने के सभी गुर सीख गया। चाहे वह अंग्रेजों की 'बाँटो और राज करो' की नीति रही हो या फिर मूल भारतीय सभ्यता संस्कृति को नष्ट करने की। स्वतंत्रता के बाद भी सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई विध्वंस आज भी पूरी गति से चालू है। यहाँ मैं इस बात को नहीं दोहराना चाहता कि किस शासक वर्ग ने या दल ने आजादी के पश्चात सत्ता अपने हाथों में ली और उनकी गलत नीतियों के क्या–क्या दुष्परिणाम हुए।

एक बात मैं यहाँ और कहना चाहता हूँ कि जैसे बीमारी से उठने के बाद अड़ोसी–पड़ोसी, नाते–रिश्तेदार सब कुशल क्षेम पूछने के बहाने अपने–अपने अनुभव और नुस्खे अपनाने की सलाह मरीजों को देते हैं वैसे ही भारत के आजाद होने के बाद यहाँ की भोली–भाली जनता पर लोकहित का वास्ता दे–देकर तरह–तरह के 'वाद' का प्रयोग आरंभ कर दिया गया। कोई 'मार्क्स' को सर पर उठाये दौड़ रहा था। कोई 'समाजवाद–समाजवाद' चिल्ला रहा था। कोई सेक्युलरिज़्म का अर्थ समझा रहा था तो कोई पूँजीवाद की घुट्टी पिला रहा था। कुछ ऐसे भी थे जो राष्ट्र–निर्माण, सभ्यता संस्कृति, निज–भाषा, सामाजिक बराबरी की बात कोने में छुपकर कर रहे थे। कोने में छुपकर इसलिए मैं कह रहा हूँ कि आजादी के पश्चात् जिन लोगों ने देश की बागडोर को संभाला उनमें

वह सारे गुण स्थानान्तरित हो चुके थे जो कई सदियों तक हम पर शासन करते रहे। ऊपर से उनके पास स्वतंत्रता सेनानी होने का सर्टीफिकेट भी था। फिर इस देश में जिसके पास स्वतंत्रता सेनानी होने का सर्टीफिकेट न हो वह राष्ट्रवादी, राष्ट्रप्रेमी या राष्ट्रहित में कैसे सोच सकता है। इसीलिए इनको अपने ही देश में छुपकर या यूँ कहें दुबककर रहना चाहिये। लेकिन यह क्या आजकल इस देश में हो क्या रहा है? वन्देमातरम् और स्वराज के नारे लग रहे हैं। लगता है सेक्युलरिज़्म की पोल खुल गयी है और तथाकथित सांप्रदायिक ताकतों (राष्ट्रवादी) ने फिर से सर उठाना शुरू कर दिया है। रोको–रोको किसी भी प्रकार से रोको नहीं तो यह प्रजातंत्र से सत्ता की प्रयोगशाला बने लोकतंत्र को भारी नुकसान होगा। बिना सर्टीफिकेट वाले कहीं देश पर कब्जा न कर लें। क्या होगा हमारे साहित्य का, हमारे मार्क्सवाद का, समाजवाद का, साहित्य और संस्कृति का। मित्रों, रोकना पड़ेगा नहीं तो हमारा अस्तित्व ही इस देश से खत्म न हो जाये, हम अप्रासंगिक हो जायेंगे। लेकिन कोई क्या कर सकता है आखिर है तो ये लोकतंत्र और जनता जो चाहे वही होगा यानी अब्राहम लिंकन सही सिद्ध हो सकते हैं। लोक हितकारी कल्याणकारी देशभक्त फिर शासन में आ सकते हैं? क्या मैं कयास लगा रहा हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ। जो भी होगा, बड़ा रोमांचकारी होगा।

देखते हैं 2014 का प्रजातांत्रिक वसंत किन रंगों को चुनकर देश में बिखेरता है और किन रंगों को पतझड़ में सूखे पत्तों की तरह बिखरने के लिए छोड़ देता है।

बात आम आदमी की

किसी भी समाज में अमूमन आम आदमी की क्या भूमिका और सोच होती है? क्या आम आदमी के पास कोई परिपक्व अथवा स्थाई विचार नहीं होता या हम यह भी कह सकते हैं कि अमूमन आम आदमी विचार शून्यता में जीता है। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जिसके पास विचार होता है वह आम आदमी नहीं होता। यह अलग बात है कि उसके पक्ष या विपक्ष में कितने लोग या समाज का कौन सा वर्ग खड़ा है।

आम आदमी एक पारंपरिक ढांचे में ही जीवन जीना पसंद करता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह बदलाव या परिवर्तन नहीं चाहता। यहाँ एक बात बहुत उल्लेखनीय है कि सबसे धैर्यवान भी समाज में आम आदमी ही होता है। जब तक उसके धैर्य की परीक्षा न ले ली जाये आम आदमी प्रतिक्रिया नहीं करता। विषय चाहे भूख हो, भ्रष्टाचार हो, सत्ता हो, संविधान हो, न्याय हो, बलिदान हो, शिक्षा हो, संवाद हो, भाषा हो, साहित्य हो, धर्म हो वह कोशिश करता है अपने आपको विवाद से दूर रखने की।

फिर भी, आम आदमी का इस प्रकार से साधारणीकरण नहीं किया जा सकता। मैं ये जानता हूँ और यह मानता भी हूँ कि एक ही झाड़ू से सबको बुहार देना भी ठीक नहीं है। मैं ये सभी बातें राजनीतिक परिदृश्य से नहीं बल्कि साहित्यिक परिदृश्य को ध्यान में रख कर रहा हूँ। इसलिए मेरे विचार से साहित्य, भाषा और पत्रकारिता को लेकर अभी भी आम आदमी विचार–शून्य बना हुआ है। भाषा, साहित्य, संस्कृति और पत्रकारिता को लेकर अभी तक राष्ट्रीय/राजकीय/जिला स्तर पर कोई ऐसा नेतृत्व नहीं दिखाई पड़ता जो किसी भी राष्ट्र के इन प्राणतत्वों की रक्षा के लिए आम आदमी के मन में आंदोलन पैदा कर पाने में सक्षम हो।

चूँकि 'साहित्य सामाजिक समुत्थान का बहुआयामी माध्यम है।' निश्चित रूप से इस माध्यम को बल पत्रकारिता से प्राप्त होता है इसलिए यहाँ पर मैं थोड़ी सी चर्चा साहित्यिक पत्रकारिता पर करना चाहूँगा। सिर्फ अच्छे लेख, कहानी, कविता आदि के चयन, संकलन या संपादन को कदापि साहित्यिक पत्रकारिता नहीं कहा जा सकता है और न ही साहित्य को आनंदसिद्धि के मंगलमार्ग का सिर्फ माध्यम माना जा सकता है। साहित्यिक पत्रकारिता को निजभाषा और निज संस्कृति का हिताकांक्षी होना चाहिए, शुभ का संधान करने वाला होना चाहिए, मनुष्यता का बीजारोपण उसकी प्राथमिकता होनी चाहिये, समाज को दिशा देना उसका मूल एजेंडा होना चाहिये न कि वह आम आदिमवृत्तियों का गुलाम होकर एक खूंटे से बँध जायें। खूंटा परतंत्रता का प्रतीक है गुलामी का हामी है परन्तु आज की पत्रकारिता केवल साहित्यकता नहीं अपने आपको एक खूंटे से बाँधना आन–बान और शान समझने लगी है। निश्चित रूप से ऐसे किसी भी व्यक्ति या संस्था से निष्पक्ष पत्रकारिता की उम्मीद करना गलत होगा जो किसी एक खूंटे से या गुट से बँधा हो या फिर किसी एक वाद के प्रभाव में हो। वह अपना खूंटा मजबूत करने की फिराक में औरों के खूंटों को उखाड़ने–हिलाने में ही अपनी सारी ऊर्जा खर्च कर देता है। ऐसी परिस्थिति में स्वस्थ और समाज उपयोगी पत्रकारिता का भविष्य हम सबके सामने है।

ऐसे में समाज वैसे लोगों के पीछे ही चलता दिखाई पड़ता है जो काट और बदले की तेवर से युक्त तात्कालिक तौर पर सफल दिखाई देगा। यही आम प्रवृत्ति है जिसे आम आदमी बहुत आसानी से ग्रहण कर लेता है। समाज की फितरत और तासीर को बदलने के लिए उसमें व्याप्त समाज को प्राप्त और उसके शिवत्व को सार्थक करने के लिए उसे निष्पक्षता के बाँध ा में बाँधना पड़ता है। बाँध बाँधने के लिए कड़ी मेहनत की दरकार होती है। अधोगामी वृतियों को उर्ध्वगामी संस्कृति में बदलने के लिए जीवन को संस्कारित करना पड़ता है।

व्यक्तिपरक वृत्तियों को त्यागना पड़ता है और चित्त की विकृतियों को सुसंस्कृत करना पड़ता है तब जाकर एक स्वस्थ समाज की नींव पड़ती है। शायद यही साहित्यिक पत्रकारिता का मूल भाव भी होना चाहिए। समाज में पत्रकारिता यानी खबरों का समुचित समाकलन, पत्रकारिता यानी विचारों का संतुलित विवेचन, पत्रकारिता यानी विरोधों से सामंजस्य। कहने का तात्पर्य यह है कि समाकलन, समेकन और सामंजस्य के उचित अनुपात में जब किसी विषय को तोल मोल कर परोसा जाता है तो निसंदेह उसमें नयापन, न्याय और सामाजिक निर्माण के पुट दिखाई पड़ते हैं। पत्रकारिता के इस आयाम को छूने के लिये यह लाजमी है कि हम और आप अपनी सम्पूर्ण निष्ठा, सामर्थ्य, लगन और पारदर्शिता के साथ अपने कार्य को अंजाम दें।

आज अराजकता तो है पर स्थिति ऐसी नहीं है कि इसे संभाला न जा सके। लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ की गरिमा से आभूषित पत्रकारिता आज अपने मूल उद्देश्य से भटक कर बाजारवादी प्रवृत्तियों के मकड़जाल में बुरी तरह से जरूर उलझ गयी है, लेकिन इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि आगे के सभी रास्ते बंद हो गये। संपादक से ऐडिटर और पत्रकारिता से मीडिया के बीच की दूरी को हमें खत्म करना पड़ेगा। खत्म न कर पायें तो कम से कम समझना तो पड़ेगा ही कि आज के संदर्भ में मीडिया और ऐडिटर की क्या भूमिका है? खबरों को सिर्फ सनसनीखेज बनाना ही पत्रकारिता नहीं है।

ऐसे समय में साहित्यिक पत्रकारिता की प्रासंगिकता बहुत बढ़ जाती है और हमारी यह जिम्मेवारी भी बन जाती है कि चाहे चुनौतियाँ कितनी भी हो हमें सामना करना चाहिये और नवनिर्माण की राह दिखानी चाहिये। आज जरूरत है पत्रकारिता को साहित्यिक संस्कारों से लैस करने की, पत्रकारिता के नवसंस्कारों को परिभाषित करने की, भविष्य के सपनों को वर्तमान में सींचने की, कुपथ पर दौड़ रहे समाज की जीवन–धारा को साहित्यिक पत्रकारिता के माध्यम से सुपथ पर मोड़ देने की। आज भी मुझे माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा कही गयी ये पंक्तियाँ उतनी ही प्रासंगिक लगती हैं जितनी उस काल में रही होंगी। उन्होंने कहा कि–'जिस देश में कलम तलवार जैसी प्रखर और क्रियाशील नहीं होती उस देश में तलवार भी तलवार बनकर नहीं रह सकती।' निश्चित तौर पर किसी भी समाज अथवा राष्ट्र का सर गर्व से तब तक ही तना रहता है जब तक वह समाज अथवा राष्ट्र अपने शौर्य को बचाने में सक्षम हो।

स्त्री विमर्श या बलि

कोमल भावनाओं, विवेकशीलता तथा संवेदनशीलता का कलात्मक संयोजन ही भारतीय नारी की पहचान है। स्त्री विमर्श के इस दौर में स्त्रियों के शक्ति और संघर्ष का चित्रण जितना आवश्यक है उतना ही जरूरी है इस बात पर भी चर्चा करना की घनघोर बाजारवादी प्रवृतियों के होड़ से भरे इस दौर में स्त्री की मूल प्रवृत्तियों को कैसे बचाया जाये? आज स्त्री बाजार का शिकार हो चुकी है। पूरी दुनिया में इस बात की होड़ मची है कि कैसे स्त्रिओं का इस्तेमाल ज्यादा से ज्यादा बाजार के रूप में किया जाये। परिणाम स्त्री व्यक्ति के रूप में कम और वस्तु के रूप में ज्यादा स्थापित हो गई है। एक प्रोडक्ट बन कर रह गई है। बाजार की बलि चढ़ गयी है।

इस बदलाव से भारतीय समाज पर दो तरह के कुप्रभाव पड़े हैं–पहला पुरुष ज्यादा डिपेंडेंट, उपभोक्तावादी और निरंकुश हो गया, दूसरा स्त्री की संवेदनशीलता कम हो गई जिससे हमारे मजबूत सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों का विघटन शुरू हो गया। हम अपनी परंपरा से लेकर रीति–रिवाजों, पर्व–त्योहारों, चाल और चरित्र सब छोड़ते जा रहे हैं। इसका कारण यह है कि हम कहीं न कहीं समानता और बराबर के अधिकार को ठीक से समझ नहीं पाए और कदम से कदम मिलाने के नाम पर स्त्रियों को बाजार की अग्नि में जलने पर मजबूर कर दिया। भारतीय समाज को सब से ज्यादा प्रभावित पश्चिम से बहने वाली बयार ने किया है। चूंकि भारतीय परिवेश और पश्चिमी परिवेश से बिल्कुल अलग है इसलिए आज हमें पश्चिम का अंधानुकरण भारी पड़ने लगा है। पश्चिमीकरण का प्रभाव आज इस कदर हमें अपने आगोश में ले चुका है कि आज का युवा वर्ग उन्मुक्त हो चुका है। सब कुछ पाने की उसे इतनी जल्दी है कि अब उसे धर्म–ईमान–भाषा–संस्कृति–परंपरा–त्योहार पर बात करना उसे समय बर्बाद करने जैसा लगता है।

ऐसा इसलिए मैं कह रहा हूँ क्योंकि भारतीय स्त्री ही हर क्षेत्र में अपनी संवेदनाओं के तार से इस समाज को सदियों बाँधे रखने में सफल रही है। जबकि वर्तमान परिदृश्य में स्त्री की संवेदनाओं का फैलाव निरंतर सिकुड़ता जा रहा है इसलिए आधुनिक भारतीय समाज सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई क्षेत्र में निरंतर विघटन को प्राप्त हो रहा है। यानी स्त्री को व्यक्ति से वस्तु बनाने को ही मूल सामाजिक विघटन के कारण के रूप में देखा जा सकता है।

माँ, बहन, पत्नी या फिर प्रेमिका आप किसी भी रूप में स्त्री को लें, मैं स्त्री को ही किसी भी समाज की बुनियाद मानता हूँ। हमारे पास सब कुछ है दुर्गा की शक्ति से लेकर सावित्री की भक्ति तक, सीता के त्याग से लेकर लक्ष्मीबाई के बलिदान तक, सुनीता विलियम्स की ऊँचाई से लेकर इंद्रा नुयी की कमाई तक, बस हमें वर्तमान परिदृश्य में उसकी व्याख्या बदलते समय के अनुसार करनी पड़ेगी। इसलिए मैं यह

कहना चाहता हूँ कि स्त्री अपने जीवन की नायिका बने, शिकार नहीं। 'महिलाएँ समाज की वास्तविक वास्तुकार होती हैं' इसलिए मेरा यह मत है कि अगर आप एक आदमी को शिक्षित करते हैं, तो आप केवल एक आदमी को शिक्षित करते हैं। लेकिन अगर आप एक औरत को शिक्षित करते हैं तो आप एक पीढ़ी को शिक्षित करते हैं। इसमें दो मत नहीं हैं कि शिक्षित औरतों का प्रभाव सभ्यता को मापने का सबसे कारगर मापदंड है।

इसलिए स्त्री–विमर्श के नाम पर आजकल जो कुछ भी लिखा–पढ़ा जा रहा है, मैं उसका घोर विरोधी हूँ। विमर्श स्त्री देह का नहीं विमर्श स्त्री से मिलने वाले नैसर्गिक संस्कार का होना चाहिए। विमर्श स्त्री को बाजार में वस्तु बनाकर प्रस्तुत करने का नहीं, स्त्री के सम्मान का होना चाहिए। विमर्श स्त्री को प्रचार का माध्यम बनाकर नहीं, विमर्श स्त्री पर होने वाले अत्याचार को रोकने के लिए होना चाहिए। विमर्श पुरुषों के विरोध पर केंद्रित न होकर पुरुषों से सहयोग पर आधारित होना चाहिए।

इस बात में कोई शक नहीं है कि दुनिया में दो शक्तियाँ सबसे महत्वपूर्ण हैं–एक तलवार की, दूसरी कलम की। इन दोनों के बीच में निरंतर मुकाबला और दुश्मनी चलती रहती है। एक तीसरी ताकत है जो दोनों से शक्तिशाली है, वो है महिलाओं की ताकत। ये जग जाहिर है कि कोई भी मुल्क यश के शिखर पर तब तक नहीं पहुँच सकता जब तक महिलाएँ कंधे से कंधा मिलाकर न चलें तो आइये स्त्री के स्वाभिमान की रक्षा के लिए सार्थक प्रयत्न आरंभ करें अन्यथा हश्र हम सबको मालूम है।

प्रतीक्षा सूर्योदय की

टिमटिमाते दीपों की टेढ़ी मेढ़ी पांतें
और झरती चांदनी के फूलों के बीच
तुमने मेरा उदास चेहरा
अपने हाथों में लेकर कहा था–
'अब तुम्हारी सहानुभूति से भरे शब्द
कारगर नहीं होंगे'
ये सरसराती हवाएं और सूनी गलियां
उदास खड़े पेड़ और अलसाए तारे
क्या ये सब भी बेचैन हैं
मेरी तरह

बेवजह क्यों याद आ रहा है
तुम्हारा खूबसूरत चेहरा
और वो स्वागत बाहें
हाथों से थरथरा गिरकर
टूटा हुआ अदना
दिल घबरा रहा है।

सूखे फूलों से
अभी भी आ रही है सुगंध
जीवन के सपनों का
उजास भरी आंखों का
रोशनाई मिट्टी में
सबके चेहरे से बरस रहा नूर

हमारे अंतरंग क्षणों में
मैं अलग से कुछ नहीं
मेरा अस्तित्व सामूहिक है तुम्हारी तरह
मेरी व्यथाओं को उन्मुक्त उड़ने दो
खुला छोड़ दो मेरे आकाश को

सूरज सजाने लगा है
सपनों के इन्द्रधनुष
जीवन की अपरिचित पगडण्डियों पर
भटकते हुए नदी की देह गरम है
ओ मेरी आत्मा! अभी मत हारो
अभी भी जीवित है मुझमें आस्था
समर्पण के बाद भी प्रतीक्षा है
एक नये सूर्योदय की
नव सृजन के उत्सव की।

राजकुमार जैन 'राजन'
सम्पादक
चित्रा प्रकाशन,
अकोला–312205
चित्तौड़गढ़
मो.–9828219919

आज के परिदृश्य में लघु पत्रिकाएं

डॉ. अनिल कुमार जैन
सम्पादक– परिधि
हिन्दी–उर्दू मजलिस
हनुमान मंदिर के पास
सराफा, बड़ा बाजार
सागर(म0प्र0)470002
मोबाः– 9993250338

साहित्यकारों की कृतियों को पाठकों तक पहुँचाने के लिए पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। एक समय था, जब सारिका, कादम्बिनी, निहारिका, धर्मयुग, हिन्दुस्तान जैसी हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं की धूम थी। प्रायः हर घर में इनमें से कोई न कोई पत्रिका मिल ही जाती थी। नए–पुराने लेखकों की रचनाएं इनमें पढ़ने मिल जातीं थीं।

इससे पाठक को अपने पसंदीदा लेखक की किताबें चयन करने में सुविधा होती थी। टेलीविजन आने के साथ–साथ ये पत्रिकाएं दम तोड़ने लगीं। सारिका, धर्मयुग, हिन्दुस्तान पत्रिका तो वर्षों पहले ही बन्द हो गईं थीं। कादम्बिनी जैसी पत्रिका को अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए रंग–रूप और कलेवर बदलना पड़ा। ऐसी विषम परिस्थितियों में उत्साही लेखकों ने लघु पत्रिकाएं निकालना प्रारम्भ किया और आज दिनाँक तक हजारों लघु पत्रिकाएं देश भर में प्रकाशित हो रहीं हैं, लेकिन इन पत्रिकाओं का पाठक वर्ग भी स्वयं साहित्यिकार ही है। आम आदमी को खुद से जोड़ने में ये विफल साबित होतीं हैं। इनकी 500 से 1000 प्रतियाँ ही छपती हैं। कुछ पत्रिकाओं ने तो रचनाओं के प्रकाशन की शर्त यही रखी है, कि रचनाकार को पत्रिका का सदस्य होना चाहिए। आख़िर कोई रचनाकार कितनी पत्रिकाओं का सदस्य बनेगा ? चूँकि पत्रिका का ग्राहक, उसका रचनाकार सदस्य ही होता है, इसलिए रचना प्रकाशन हेतु दबाव भी डालता है। अतःएव रचनाओं का चयन प्रभावित होता है और पत्रिका के स्तर में गिरावट आती है। कई बार स्तर की इस गिरावट और अर्थाभाव के चलते पत्रिका दम तोड़ देती है। इसके बावजूद कई लघु पत्रिकाएं श्रेष्ठ रचनाओं के संकलन के साथ सामने आ रहीं हैं। जिन्हें सराहा भी जा रहा है।

सागर नगर की 'हिन्दी–उर्दू मजलिस' संस्था पिछले 23 वर्षों से हिन्दी साहित्य के प्रचार–प्रसार के लिए काम कर रही है। 16 वर्ष पूर्व 'परिधि' नाम से पत्रिका निकालने का निर्णय संस्था के सदस्यों द्वारा लिया गया। संपादन का कार्य मुझे सौंपा गया और 16 वर्षों से मैं इस पत्रिका का संपादन कर रहा हूँ। पत्रिका निकालने का मुख्य उद्देश्य सागर के उन रचनाकारों को प्रस्तुत करना था, जो अच्छा लिख रहे हैं लेकिन कहीं प्रकाशित नहीं हो पा रहे हैं। शुरुआत में बाहर के रचनाकारों द्वारा पक्षपात का दोषारोपण भी किया गया, लेकिन जल्द ही देश भर के रचनाकार इस पत्रिका से जुड़े। पत्रिका प्रकाशित करने की सबसे पहली और बड़ी ज़रूरत ध ान थी, जिसे संस्था के संरक्षकों और सदस्यों ने पूरा किया। इसी सह्योग के कारण 'परिधि' पत्रिका आज तक अपना अस्तित्व बनाए हुए है। इसी पत्रिका के नाम से 'हिन्दी–उर्दू मजलिस' संस्था द्वारा प्रतिवर्ष दो साहित्यकारों को 'परिधि ा–सम्मान' भी प्रदान किया जाता है।

प्रारम्भ में इस पत्रिका को बेचने की कोशिश भी की गई, पर कोशिश लगभग नाकाम ही रही। आजकल तो हालात ये हैं, कि पत्रिका की एक प्रति भी नहीं बिकती है। नई पीढ़ी में जिस किसी को भी साहित्य के प्रति रुझान है, वे इन्टरनेट पर अपने मन की चीजें खोज लेते हैं। छपी पुस्तकें, पत्रिकाओं के पाठक कम हो गए हैं। पहले जब मैं रेल में सफर करता था, तो हर तीसरे–चौथे मुसाफिर के हाथ में कोई पुस्तक या पत्रिका होती थी, लेकिन आज सफर में सभी के हाथ में मोबाइल नज़र आता है। इसके बावजूद लघु पत्रिकाएं अपना वजूद बनाए हुए हैं और नए–पुराने रचनाकारों का सम्बल बन रहीं हैं। इनके माध्यम से रचनाकारों का आपसी परिचय भी बढ़ता है। मैं ये भी देख रहा हूँ, कि एक पत्रिका बन्द होती है, तो किसी उत्साही रचनाकार के माध्यम से दूसरी खड़ी हो जाती है। इन पत्रिकाओं की अपनी उपादेयता है।

लघु पत्रिका निकालना वास्तव में मेहनत, लगन और समर्पण का कार्य है। रचनाओं का चयन करना, उन्हें सिलसिलेवार जमाना, फिर प्रूफ रीडिंग करना और प्रकाशन हेतु धन एकत्र करना यदि यह सारे कार्य एक ही व्यक्ति के जिम्मे हों तो, कार्य असम्भव नहीं, पर कठिन अवश्य हो जाता है। आज नेट का उपयोग करने वाले पाठकों के लिए 'ई–पत्रिकाएं' भी प्रारम्भ हो गईं हैं। इनके पाठकों की संख्या भी ज्यादा दिखाई देती है। आज सोशल मीडिया पर भी ढेरों रचनाएं पढ़ने को मिल जाती हैं। कविता कोश, गद्य कोश, रेख़्ता जैसी वेबसाइट पर हजारों हिन्दी, उर्दू के रचनाकारों की रचनाएं पढ़ी जा सकती हैं। इसके बावजूद प्रिन्ट मीडिया चलता रहेगा। इसका मज़ा ही अलग है, क्योंकि कोई भी रचनाकार सबसे अधिक प्रसन्न और उत्साहित किसी पत्रिका में छपी अपनी रचना को देखकर ही होता है। मैं नहीं सोचता, कि लघु पत्रिकाओं के लिए किसी यूनियन की आवश्यकता है, क्योंकि सरकार वैसे भी लघु पत्रिकाओं के लिए अनुदान देती है। सरकारी विज्ञापन भी कुछ पत्रिकाओं को मिल जाते हैं, बस ज़रूरत है पाठकों के इनसे जुड़ाव की और इनके स्तरीय होने की।

सामाजिक सन्दर्भों में वर्तमान हिन्दी कविता की स्थिति

डॉ. उमेश महादोषी
सम्पादक
विराम साहित्यिकी
121, इन्द्रापुरम,
निकट बीडीए कॉलोनी,
बदायूँ रोड,
बरेली–247667,
(उ.प्र.)
मो.–09458929004

आज की हिन्दी कविता समग्रतः सामाजिक सरोकारों की कविता है। इसके बावजूद सामाजिक सन्दर्भों में कविता की भूमिका की परख इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि एक ओर मनुष्य और उसके परिवेश के समक्ष कई नई और गम्भीर चुनौतियाँ खड़ी हो रही हैं, दूसरे पुराने सामाजिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में कविता के प्रांगण में होने वाले तमाम विमर्श अपेक्षित परिणाम नहीं दे पा रहे हैं।

अनपेक्षित कहीं अधिक घट रहा है। समाज में कुछ अच्छी चीजों के लिए हो रहे प्रयासों के बावजूद विघटन की प्रक्रिया तेज हो रही है, नए मानवीय मूल्यों के साथ मनुष्यता के विकास की कुछ कोशिशों के बावजूद मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी बढ़ रही है। एक सीमा तक यह सत्य है कि समाज में सामान्य और वैयक्तिक जीवन मूल्यों के क्षरण, जीवन के सामाजिक अनुशासन भंग होने जैसी स्थितियाँ पैदा होने पर कविता ने करवट बदली है और अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। बहुत सारे परिवर्तनों को रेखांकित और रचनात्मक परिवर्द्धनों को प्रणीत किया है। लेकिन यह हमेशा और एक परिपाटी की तरह होता रहा हो, ऐसा नहीं है। विचारधाराओं और सामाजिक व शासकीय व्यवस्थाओं की संरचना के अनुरूप इतर चीजें घटती रही हैं। जब व्यवस्था विचारधाराओं को प्रभावित करने की स्थिति में आ जाती है और विचार व चिन्तन व्यवस्था का अनुगामी बनने लगता है तो ऐसा ही होता है। व्यवस्थाएँ अहं का शिकार हो जाती हैं और विचारधाराएँ उसकी पोषक। समाज का पीड़ित वर्ग ऐसी व्यवस्था से येनकेन छुटकारा चाहता है और इसके लिए वह अपने साथ खड़े होने वाले किसी भी विचार और रास्ते को स्वीकार और सहृदय मानने की भूल कर बैठता है। परिणास्वरूप वह कुछ दूसरी समान्तर अतिवादी व्यवस्था की स्थापना और उसकी समर्थक विचारधारा के पोषण का माध्यम बन जाता है। इस प्रक्रिया में एक ओर अतिवाद के रास्ते विचारधाराएँ संकीर्णता का शिकार हो जाती हैं, दूसरी ओर संघर्ष के नाम पर आतंकी जामा पहनने तक से परहेज नहीं करती। निर्मित परिवेश में सकारात्मक और मानवीय विचार व चिंतन के लिए न तो स्थान बचता है, न ही साहस। मनुष्यता के संरक्षण और विकास के साथ वास्तविक सामाजिक सरोकारों की पहचान, स्थापन और पोषण का कार्य विचाराधाराओं की भूल–भुलैयों में खो जाता है। इस बिन्दु पर कविता अपनी तमाम शक्ति और उत्साह के बावजूद असहाय खड़ी दिखाई देती है।

आज हम जिस काल खण्ड में खड़े हैं, वह भी काफी कुछ ऐसी ही स्थिति का शिकार है। आज कविता मुखरित है लेकिन उसकी दिशा दुराग्रही विचार और यथार्थ की भूल–भुलैयों में खोई हुई है। वास्तविक अपेक्षित यथार्थ का निर्धारण विवादों के द्वारा घेर लिया गया है। इसके पीछे का सबसे बड़ा कारण यह है कि एक लम्बे संघर्ष से प्राप्त आजादी के बाद हमने जिस 'लोकतंत्र' को हासिल किया, स्वीकार किया, उसे उसके वास्तविक स्वरूप में विकसित नहीं होने दिया। व्यवस्था के एक यंत्र के तौर पर हमने उसे अपनाया, वह भी आधा–अधूरा। लेकिन मानवीयता पर आधारित जीवन की निर्वाधता के विचार–चिंतन की दिशा और समृद्धि का यंत्र हम उसे नहीं बना पाये। वह ऐसा यंत्र बन सकता है, इस तथ्य को हम स्वीकार तक नहीं कर पाये हैं। इस सन्दर्भ में अपने समय के परिवेश के बारे में सोचते हुए मुझे तो आश्चर्य होता है कि लोकतंत्र की उपस्थिति में भी उससे इतर विचारधाराओं की आवश्यकता होती है। ठीक है कि लोकतंत्र स्वयं इसकी अनुमति देता है। लेकिन इसका यह अर्थ कैसे हो सकता है कि उसी लोकतंत्र को अक्षम बनाकर अपनी अपूर्ण और अतिवादी चीजों से हम उसे ही प्रतिस्थापित करने लग जायें, प्रदूषित करने लग जायें! क्या 'लोकतंत्र' के प्रति हमारी समझ का यही स्तर है? निसन्देह लोकतंत्र बहुत सारी चीजों की अनुमति देता है, बहुत सारे यंत्रों और अस्त्रों से मनुष्य को सम्पन्न बनाता है, लेकिन वह ऐसे उपायों की ओर भी निर्देश करता है, जिनसे इनमें से किसी यंत्र, किसी शस्त्र के उपयोग की आवश्यकता न पड़े। हमें यह समझना होगा कि मनुष्यता के इतिहास में 'लोकतंत्र' अब तक की सबसे बड़ी खोज तो है ही, सबसे व्यापक विचार और दृष्टि भी है। इसमें हर समस्या का समाधान मिल सकता है, यह हर तरह के अनुशासन और जरूरी नियंत्रण के तत्वों और तकनीक से परिपूर्ण है। सबसे बड़ी बात, मनुष्य होने की भरपूर आजादी देता है। लोकतंत्र अधिकारों और कर्तव्यों को एक–दूसरे का पूरक मानकर मानव मात्र को अधिकारों से सम्पन्न बनाता है तो कर्तव्यों का पाठ भी पढ़ाता है। यदि इसे इतर विचारधाराओं के प्रदूषण से बचाया जा सके, उसके वास्तविक रूप–स्वरूप में संरक्षित किया जा सके, लोकतंत्र हर विचारधारा से श्रेष्ठतर और उनकी खामियों का श्रेष्ठतम उत्तर है। मनुष्यता का सर्वोपरि मार्गदर्शक और संरक्षक है। परिस्थितियों के अनुरूप कुछ सामयिक एवं आवश्यकता आधारित समायोजनों को बतौर पूरक अपनाना एक अलग बात है और उसके लिए गुंजाइश भी है। मेरा तो

विश्वास है कि तमाम मानवीय सरोकारों के साथ समाज का जैसा विकास और प्रगति लोकतंत्र के दायरे में संभव है, वैसी किसी अन्य विचारधारा के साथ नहीं। लेकिन हमारे अपने समय में हो क्या रहा है? तमाम किन्तुओं–परन्तुओं के साथ निरंतर लोकतंत्र को आहत किया जा रहा है। अनेकानेक स्वार्थों और अहं के वशीभूत मनुष्यता के विकास में व्यवधान डालने, बल्कि कहना उचित होगा कि मनुष्यता को प्रताड़ित करने वाली विचारधाराओं के साथ जश्न मनाया जा रहा है।

चूंकि समाज और उसके विकास से जुड़ा हर पहलू कहीं न कहीं विचारधाराओं से नियंत्रित होता है, इसलिए दो बातों पर गौर करना जरूरी हैं– पहली बात विचारधारा समग्रतः मनुष्यता के विकास की प्रेरक और पक्षधर हो और पूर्ण या पूर्णता के यथाधिक समीप हो। दूसरी बात वह व्यवस्था की अनुगामिनी न होकर व्यवस्था के प्रत्येक अंग को मार्गदर्शन देने में सक्षम हो। उसमें हर व्यवस्था के समक्ष खड़े होने का साहस हो। ये चीजें जिस विचार के साथ नहीं होंगी, वह न समाज का भला कर पायेगा, न ही मनुष्यता का संरक्षण। ये दोनों बातें हमें 'लोकतंत्र' की आवश्यकता और महत्ता का अहसास कराती हैं और साहित्य व चिन्तन से जुड़े वर्ग की वास्तविक और लोकतंत्र के पक्ष में सकारात्मक जागरूकता, सक्रियता व साहस की आवश्यकता की ओर भी संकेत करती हैं। सकारात्मकता से मेरा सीधा आशय आलोचना और उत्साहवर्द्धन के संपृक्त प्रवाह से है। यानी सामाजिक दायरों में व्यक्तियों और समूहों के ऊपर चीजों की आलोचना या विरोध और समर्थन को वरीयता। विरोध के नशे में अच्छी चीजें हतोत्साहित और समर्थन के व्यामोह में गलत चीजें स्थापित नहीं होनी चाहिए। साहित्य, विशेषतः कविता और उससे जुड़े लोगों का यह विशेष दायित्व है। व्यापक सामाजिक सरोकार इसी रास्ते से निकलते हैं, उन्हें इसी रास्ते से जोड़कर चलना उचित होगा। लेकिन उन्हें इतर संकुचित विचारधाराओं के जाल में उलझाया जायेगा तो वे सामूहिक स्वार्थों से अधिक कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकेंगे। चूँकि हो ऐसा ही रहा है इसलिए आज की हिन्दी कविता सकारात्मक चीजों को समझती तो है, लेकिन उन्हें आगे बढ़ाने में सक्षम नहीं हो पा रही है।

मेरे मन में अक्सर प्रश्न उठता है कि अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनों और समस्याओं के समाधान के अनेक यंत्रों की खोज के बावजूद हड़ताल जैसी चीज का विकल्प हम क्यों नहीं खोज पाये! चुनी हुई जन सरकारों के समक्ष भी विध वंसक आन्दोलनों का उत्तर हमारे पास नहीं है! इस तरह के अस्त्र यदाकदा आपातकालीन समायोजन के लिए तो उचित हो सकते हैं, लेकिन परम्परा बनाए जाने पर मनुष्यता और सामाजिकता– दोनों के लिए विध्वंसक होते हैं। इनका विकल्प खोजना बहुत जरूरी है। लोकतंत्र ने ऐसी चीजों के स्थाई समाधान के लिए कई संकेतात्मक चीजें दी हैं, जिनके व्यापक उपयोग से नई, अच्छी व प्रभावशाली चीजें खोजी जा सकती हैं और मनुष्यता को क्षत–विक्षत होने से बचाया जा सकता है। लेकिन उनका या तो इतर अनैतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा रहा है या फिर उन्हें उपेक्षित किया जा रहा है। बहुत बार कविता से निकलते स्वर और उससे जुड़े लोग समूहबद्ध होकर जब ऐसी नकारात्मक चीजों का समर्थन और उत्साहवर्द्धन करते दिखाई देते हैं, तो कम से कम मुझे तो एक व्यापक बौद्धिक दिवालियापन दिखाई देता है। मनुष्य और उसकी समाजिकता से जुड़ी बहुत सारी समस्याएँ हैं, जिनके स्थाई, सर्वग्राह्य और प्रभावशाली समाधान की प्रक्रिया को दीर्घकालिक स्वतः स्फूर्त व्यवस्था के तहत लाया जा सकता है। हम बहुत बार लोकतंत्र की असफलता का रोना रोते हैं, लेकिन उसकी वास्तविकता का विश्लेषण नहीं करते। हम गुब्बारे के अन्दर गुब्बारे फुलाये जा रहे हैं। धुएँ के बीच खड़े होकर हम धुएँ की चर्चा करते हैं, धुएँ के दुष्परिणामों की चर्चा करते हैं, लेकिन धुआँ के वास्तविक स्रोत पर हम विचार नहीं करते। कविता से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह चीजों को वास्तविक रूप में पहचाने भी और उनके समुचित समाधान की बात भी करे। चिंतन और अतिउत्साह में समर्थन के झण्डे पकड़ने के मध्य का अन्तर समझा जाना चाहिए।

हिन्दी कविता ने निसन्देह अपने परिवेश में सामाजिकता को समेटा है, लेकिन उसे सही दिशा में ले जाये, राजनीति के व्यामोह से मुक्त होकर चीजों को बदले हुए लोकतांत्रिक विचार से सम्पन्न परिवेश में समग्र मनुष्यता को केन्द्र में रखकर चिंतन करे, प्रतिबद्धताओं के दायरों की सामयिक और व्यापक न्यायसंगतता की परिधि में समीक्षा करके आगे बढ़े, यह समय की आवश्यकता भी है और उसके समक्ष वास्तविक चुनौती भी। आज मनुष्यता एक तरह के घमासान के परिवेश में अपने बचाव के लिए छटपटा रही है। कविता को उसकी छटपटाहट को अभिव्यक्ति देने के साथ उसे संकट से उबारने में अपनी भूमिका पर भी विचार करना चाहिए।

छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति की पीड़ा

सुधा वर्मा
सम्पादक देशबंधु के छत्तीसगढ़ी अंक ''मडई''
प्लॉट नं.–69 ''सुमन''
सेक्टर–1, गीतांजली नगर
रायपुर छ.ग.
मो.–9406351566

किसी भी राज्य की पहचान उसकी भाषा और संस्कृति होती है। आज वैश्वीकरण के दौर में बहुत बदलाव हो रहा है। हमारी लोक संस्कृति पर बाहरी संस्कृति हावी हो रही है। उससे पीड़ादायक स्थिति त्यौहारों की है।

दीपावली का त्यौहार आज धनलक्ष्मी की पूजा में सिमट गया है। छत्तीसगढ़ में लक्ष्मी की फोटो नहीं थी तब धान की बालियों को और कुछ जेवर को रखकर पूजा की जाती थी।

सेठ साहूकार ही मोहर और अपनी तिजोरी की पूजा करते थे। पूरे घर की साफ सफाई, लिपाई, पोताई करके तैयार रखते हैं। शाम को चौकी या पीढ़े पर गौर गणेश के साथ धान की बालियां, कुछ जेवर और पैसे रखने कर थैली में कुछ सिक्के डालकर पूजा की जाती थी। सिक्कों को पहले दूध से धोया जाता था फिर गंगाजल से धोते थे। साफ कपड़े से पोंछ कर उसकी पूजा की जाती थी। पूजा के बाद महिलाएं अपने जेवर पहन लेती थीं। पहले सोने चांदी के मोहर की भी पूजा की जाती थी। बाद में सिक्के आ गये। करीब चालीस साल पहले चांदी के लक्ष्मी गणेश के सिक्कों का व्यापार शुरू हो गया। अब यह भी बंद होने की कगार पर है। इन सिक्कों का कोई उपयोग नहीं है। दीपावली की ग्वालिन अब गांवों तक ही सिमट कर रह गई है।

धनतेरस के दिन कांसे की कटोरी खरीदने का रिवाज था। धीरे–धीरे कांसा, पीतल में बदला, उसके बाद चांदी के बरतन खरीदने लगे। बाद में बड़े–बड़े इलेक्ट्रानिक सामान खरीदने लगे। यह कांसे की कटोरी क्यों खरीदी जाती थी ? शरद पूर्णिमा के दिन समुंद्र मंथन से जो अमृत निकला था उसे धनतेरस के दिन बांटा गया था। उस अमृत को लेने के लिए ही कांसे की कटोरी खरीदी जाती थी। यह प्रतीकात्मक होता था। इसमें दूध छिड़ककर पूजा भी करते थे। अब तो शायद ही किसी को पता होगा कि कांसे की कटोरी क्यों खरीदी जाती थी। अब तो यह हो गया है कि कुछ सामान खरीदना है। अब धनतेरस के दिन चांदी के सिक्के खरीदने का रिवाज भी कम हो रहा है। सौ दो सौ की कांसे की कटोरी के बदले अब हजारों या लाखों के जेवर खरीदना शुरू हो गया है।

दीपावली के पहले ही छत्तीसगढ़ में सुआ नृत्य शुरू हो जाता है। सुआ नृत्य एक जाति विशेष के लोग करते हैं। इससे एकत्र हुआ अनाज और पैसा, गौरा–गौरी के विवाह में खर्च करते हैं। यह विवाह अमावस्या की रात को होता है। दीपावली की रात को विवाह करते हैं। आज सुआ नृत्य और गीत का स्वरूप भी बदल गया है। छत्तीसगढ़ का पहनावा साड़ी और करधन, ढरकऊवा पुतरी भी अब देखने में नहीं आता है। गीतों के बोल आधुनिक हो रहे हैं। फिल्मीकरण हो रहा है। सुआ नृत्य में लड़कियां अब फ्राक या जीन्स पहन रही हैं। नृत्य के समय एक टोकनी में धान रखते हैं और उसके ऊपर मिट्टी का सुआ यानी तोता रखा जाता है। इस टोकनी को जमीन में रख देते हैं और उसके चारों तरफ नृत्य करते हैं। पर अब यह भी दिखाई नहीं देता है। बस एक टोकनी ही रहती है।

शिव पार्वती के विवाह को ही गौरा कहा जाता है। गौरा छत्तीसगढ़ की जनजाति गोंडों का त्यौहार है। पर इसमें सभी जाति और वर्ग के लोग भाग लेते हैं। ''सुरहुती'' यानी आज की लक्ष्मी पूजा के नौ दिन पहले से ''गौरा'' त्यौहार मनाने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। लोकगीत गा–गा कर गौरा को जगाते हैं और सुलाते हैं। चौरा में फूल कूटते हैं। इसी चौरे को गौरा चौरा कहते हैं। यह हर उस गांव में होता है जहां पर गोंड जाति के लोग रहते हैं। इस चौरे को गोबर से लीप कर साफ करते हैं और फूलों से सजाते हैं। दीपावली के दिन ही सुबह सुबह पवित्र स्थान से मिट्टी खोदकर लायी जाती है। इसके लिए दीमक की बांबी की मिट्टी लायी जाती है। कुंआरी कन्याएं ही मिट्टी लाती हैं। इसे गौरा चौरा में रखकर सफेद कपड़े से ढंक देते हैं। सुरहुती की रात को सबके घर से मिट्टी का जलता कलश और पैसा चावल एकत्र करते हैं। एक सप्ताह पहले से सुआ नृत्य के माध्यम से भी पैसा चावल एकत्र करते हैं। गोवर्धन पूजा के दिन मूर्तियां बनायी जाती हैं। दो लकड़ी के पाटे पर गौरा और गौरी की अलग अलग मूर्ति बनाते हैं। सुनहरे कागज से सजा कर मंडप बनाया जाता है। लोकगीत गाते रहते हैं। एक कलश की स्थापना की जाती है। दो लड़कियां गौरा गौरी को सिर पर उठाकर चौरा के सात चक्कर लगाती हैं। सप्तपदी के सात वचन भी पूरे होते हैं। विवाह सम्पन्न होता है और फिर विसर्जन के लिए तालाब की ओर चले जाते हैं। विसर्जन के लिए जाते समय भी बहुत से लोग रोक रोक कर पूजा करते हैं।

लोक संस्कृति और लोक गीत में समाया यह त्यौहार अब सिर्फ गांवों में ही दिखाई देता है। अब गोंड जातियां भी आगे बढ़ चुकी हैं, जो यह काम नहीं करना चाहती हैं। यह त्यौहार विलुप्ति की कगार पर है। अब इसे विलुप्ति से बचाने के लिए गणेश दुर्गा उत्सव की तरह सार्वजनिक रूप से मनाना होगा।

शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि हम अपनी पहचान खोने लगे। दीपावली की रात आज भी ''भड़भड़ बोकरा'' की आवाज के बिना सूनी लगती है। मिट्टी के दीये की जगह बिजली के छोटे छोटे बल्ब आ गये हैं। लड़ियां लगा कर जीवंत लगते मिट्टी और तेल के दीये को हमने किनारे लगा दिया है। हजारों कुम्हार बेरोजगार हो गये। अब छत्तीसगढ़ की राजधानी में एक मुहिम चला कर मिट्टी के दीये बांट रहे हैं मुफ्त में। जिससे कुम्हार को काम मिले। सरकार की बिजली की बचत हो। इन बिजली के बल्बों की वजह से वातावरण में बढ़ते ताप को रोका जा सके। अब कहीं कहीं दीये भी दिखने लगे हैं। अब आकाशदीप कहीं दिखाई नहीं देता है, एक समय था जब यह घर की ऊंचाई पर या बाहर को रोशन करता था। अब यह क्रिसमस पर दिखाई देता है। ऐसी मान्यता थी कि अमावस की रात को यमलोक से आत्माएं नीचे आती हैं तो यह ऊंचाई पर लगी आकाशदीप की रोशनी उन्हें रास्ता दिखाती है। ये आकाशदीप उनके रास्ते रोशन करने के लिए जलाये जाते थे। घर को दीये से रोशन राम भगवान के आने की खुशी में करते हैं। अब इसे लक्ष्मी और धन से जोड़कर देखा जाता है। धनतेरस को चावल आटे के दिये और नरक चौदस को कच्ची काली मिट्टी के दीये बनाकर जलाते थे। इसके पीछे भी कारण थे। परन्तु अब सभी मिट्टी के लाल पके दीये ही जलाने लगे हैं। यह सब लोक की सोच है जिसके पीछे कोई न कोई कारण होता है, यह अंधविश्वास नहीं है।

शरद पूर्णिमा की ''खीर'' अभी थोड़े परिवर्तन के साथ बाकी है। कुछ लोग घर के बाहर खुले में भी बनाते हैं। परन्तु वह शरद के स्वागत के लिए न ''चऊक'' या 'रांगोली' होती है न रात जागते हैं। प्रकृति ने भी अपनी नाराजगी दिखा दी है। अब शरद की रात को ठंड की शुरूआत नहीं होती। मौसम गर्म होने लगा है।

छत्तीसगढ़ की संस्कृति में ''अगहन'' मास का बहुत महत्व है। अगहन मास के गुरूवार को लक्ष्मी के साथ विष्णु भगवान की पूजा की जाती है। घरों में एक माह के लिए स्थापित करते हैं। धान की फसल दीपावली तक पककर तैयार होती है। धान की कटाई शुरू हो जाती है। अगहन के महीने में हर घर के आंगन में ''राश'' आता है। धान मिंजाई के बाद साफ धान निकलता है उसे ही ''राश'' कहते हैं। इसे लक्ष्मी का रूप माना जाता है। इस ''राश'' को घर में लाने के पहले घर के आंगन और बाहर को गोबर से लीप कर साफ कर लेते हैं। घर की दीवारों के नीचे चारो तरफ चूने से पोताई करते हैं, इसे ''अंऊठियाना'' कहते हैं। इस घर को देखकर सब समझ जाते हैं कि आज यहां ''राश'' आने वाला है।

कांवड़ या बैलगाड़ी से जैसे ही राश आता है तो घर के दरवाजे पर पानी ''कोरछ'' कर यानी घर के दरवाजे पर बांये से दायें लाइन से पानी की धार डालकर उसका स्वागत करते हैं। इस प्रकार से धान को लाकर पहले आंगन में रखते हैं उसके बाद कोठियों में भरा जाता है। आजकल सभी काम ट्रेक्टर से होने लगा है, प्रक्रिया तेज हो गयी है। बहुत से घरों में अब कोठी भी नहीं है। खेत से धान सीधे बाजार में बेच देते हैं।

एक संस्कृति विकास की भेंट चढ़ गई पर यह किसी न किसी रूप में आज शहरों तक पहुंच गई है। ''राश'' आने का महीना अगहन होता है। इस अगहन मास में घरों में लक्ष्मी और विष्णु भगवान की स्थापना की जाती है। यह अब शहरों में भी रखने लगे हैं। कहीं न कहीं गांव से जुड़े लोग अपने गांव की संस्कृति को छोड़कर शहर आ गये हैं। यहां धान और राश नहीं है तो क्या हुआ प्रतीक तो हैं। धान के झालर, आंवले की शाख और आंवले की भी पूजा करते हैं। इस माह आने वाले नये कंद फल भी चढ़ाया जाता है, जिमीकंद, रखिया, कद्दू चढ़ाया जाता है। गांव से शहर की ओर आई यह संस्कृति आज पूरे जोश के साथ दिखाई देती है। बुधवार को पूरे घर की सफाई की जाती है। गोबर के गौर गणेश रखकर कलश स्थापना की जाती है। गुरूवार को दिन में तीन बार पूजा की जाती है। सुबह चार पांच बजे पूजा होती है जब फल का भोग लगता है। बारह से एक दो बजे भोजन का भोग लगता है। जिसमें चीला, चौसेला, पूरनपूड़ी, बेसन के लड्डू या बर्फी, दूधबूरा या खीर या तमसई का भोग लगाया जाता है। शाम को सूखा मेवा या लायचीदाना चढ़ाया जाता है। बुधवार की शाम को चावल को पीस कर रेहन बनाया जाता है, उसी से पूरे आंगन में ''चऊंक'' बनाया जाता है। यह चऊंक अलग अलग नाम से पूरे भारत में बनाया जाता है, उड़ीसा, दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में भी यह बनाया जाता है। इस चऊंक को घर के बाहर से लक्ष्मी की चौकी तक जोड़ा जाता है। बीच–बीच में लक्ष्मी के पैर बनाये जाते हैं। रात को ही गेंदे के फूल की माला बनाइ जाती है। पहले हर घर में फूल होता था तो लोग हाथ से ही माला बनाते थे। अब तो माला खरीद कर ले आते हैं। अब यह चऊंक पूरना कम होता जा रहा

है। नई तरह की रांगोली बनायी जाने लगी है। यह संस्कृति खेत खलिहान नहीं होने के बाद भी जीवित है। बहुत जोश के साथ लोग मनाते हैं। यह आधुनिकता का पुट लिए अलग–अलग रूप में जीवित है।

पौष माह की पूर्णिमा को ''पूस पुन्नी'' कहते हैं। इस दिन छत्तीसगढ़ में छेरछेरा मनाया जाता है। कुछ जगह इसे शाकम्भरी जयंती या शाकम्भरी देवी के नाम से भी जानते हैं। खेतों की फसल घर तक आती है और घर की कोछियों में रख दी जाती है। गांव में सब खुशियां मनाते हैं। घर को लीप पोत कर साफ करते हैं। घर के आंगन और बाहर को गोबर ये लीपकर साफ करते हैं। गांव में सुबह सुबह एक टोकनी में धान रखकर घर की बुजुर्ग महिला बैठ जाती है। सुबह से नहाकर लोग ''छेरछेरा'' मांगने निकलते हैं। हर घर के दरवाजे पर जाकर आवाज लगाते हैं–

छेरछेरा हो छेरछेरा
माई कोठी के धान ल हेरहेरा

नहीं देने पर या देरी होने पर बोलते हैं–

अरन बरन कोदो दरन
जभे देबे तभे टरन

सभी को ''छेरछेरा'' में अनाज दिया जाता है। मुर्रा के लड्डू भी देते हैं। बाड़ी की साग भाजी भी देते हैं। इसके पीछे एक दंतकथा है आखिर इस तरह की शुरूआत के पीछे कुछ तो बड़ा कारण होता ही होगा।

एक बार बहुत भारी अकाल पड़ा। बीज के लिए रखा अनाज भी खतम हो गया। सब लोग आकाश की तरफ देखकर ''त्राहि–माम् त्राहि–माम्'' चिल्ला रहे थे। अचानक काले बादल आ गये। आकाश में एक काली आकृति उभरी। उसने ''श्रेयः श्रेयः'' बोलकर बहुत से पौधे और अनाज गिराये। तेज बारिश हुई। पौधों को खेतों की बाड़ियों में लगाया गया। साग भाजी को भी खाने के लिए रखा गया और कुछ को उगाया गया। अनाज के बीज जो गिरे थे उससे फसल लहलहा उठी। सब लोग मिल बांट कर खाये। उस दिन से यह दिन एक त्यौहार की तरह हो गया। इस दिन लोग अपनी फसल में से या बीज के लिए जो रखते हैं उसमें से निकाल कर बांटते हैं, दान करते हैं। गांव के लोग ''छेरछेरा माई कोठी के धान ल हेरहेरा'' की आवाज के साथ अनाज दान देने निकलते हैं। दान में जमा हुये अनाज का कुछ हिस्सा गांव में जमा करके रखते हैं। इसे ऐसे व्यक्ति को उधारी देते हैं जिसकी फसल नहीं हुई हो। जब अकाल पड़ता है तब यही अनाज काम आता है। फसल होने पर इसे वापस कर दिया जाता है। कई गांव में 18–20 गाड़ा धान एकत्र हो गया है। जिस जगह पर इस धान को रखते हैं उसे राम कोठी कहते हैं। इससे कई गांव में बेटी की शादी भी करवाये हैं। अब इस राम कोठी की कल्पना या अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। अब लोग ''छेरछेरा'' मांगने जाना पसंद नहीं करते हैं। शहरों में तो उड़िया बच्चे ही मांगने के लिए निकलते हैं। उन्हें मांगना भी नहीं आता है। यह सुन्दर संस्कृति लुप्त होने की कगार पर है।

छत्तीसगढ़ में तीज त्यौहार अनोखे ढंग से मनाया जाता है। ''हरितालिका'' को ही यहां ''तीजा'' कहा जाता है। भादों माह में इसे मनाया जाता है। इस उपवास को कुंवारी, सधवा और विधवा सभी लोग रहते हैं। सात जन्मों तक एक ही पति मिले इस कारण इस उपवास को रहा जाता है। पार्वती माता अपने मायके में आकर उपवास में रहकर इस व्रत को करती हैं और उन्हें शिव जी दर्शन देते हैं और वरण करते हैं। इसी कारण सभी नारियां मायके में आकर उपवास और उसका परायण करती हैं। महिलाएं उपवास के पहले दिन मायके जाती हैं। भाई अपनी बहन को लेने जाता है। मायके में रात को करेले की सब्जी खाई जाती है। इसे ''करू भात'' कहते हैं। करेला शरीर के पित्त को शांत रखता है। इससे उपवास के दिन मुंह सूखता नहीं है। उपवास बहुत कठिन होता है। पूरे दिन पानी भी नहीं पीते हैं। उपवास की रात को फुलेरा रखकर बालू से शंकर जी बनाते हैं और उसी की पूजा करते हैं। सुबह इसका विसर्जन तालाब में करते हैं। छत्तीसगढ़ ही है जहां महिलाएं इतना कठिन व्रत करती हैं। तीज के उपवास के लिए महिलाएं मायके आती हैं। विधवा भी उपवास रहती है। आज की आपाधापी जीवन में, नौकरी करने वाली महिलाएं अपने मायके में तीन दिन नहीं रह पाती हैं। घर घर जाकर ''करूभात'' यानी करेला भात खाने का रिवाज भी अपने तक ही सिमट रहा है। उपवास की रात को ''फुलेरा'' रखकर पूजा तो सब जगह होती है परन्तु फलाहार के दिन जिसे ''बासी खाना'' कहते हैं वह बदल रहा है। यह भी गांव में ही दिखाई देता है। शहर में लोगों के घरों की दूरी इस त्यौहार में भी दूरी ला दी है। पहले उपवास के दिन ही तिखूर सिंघाड़ा, चौसेला (चावल आटे की पूड़ी) अनरसा और पूड़ी, कढ़ी बना लेते थे। दूसरे दिन सुबह सिर्फ गर्म चावल पकाया जाता था। रात का बना भोजन सुबह खाते थे, इसे ही बासी खाना कहते थे जो अब ताजे खाने में बदल गया है। मारवाड़ी समाज, सिंधी समाज साल में एक दिन आज भी ठंडा खाते हैं पर हम अपनी संस्कृति को छोड़ रहे हैं।

छत्तीसगढ़ में होली का त्यौहार शिव और कामदेव से जुड़ा है। यहां पर महिलाएं होली की पूजा नहीं करती हैं और न ही उसे जलते हुए देखती हैं। होलिका और प्रहलाद से जुड़ी कथायें राजस्थान की है, इस कारण मारवाड़, राजस्थान में महिलाएं होलिका की पूजा करती हैं। प्रहलाद को बचाने के लिए। प्रहलाद के न जलने के कारण खुशियां मनाकर रंग गुलाल खेलती हैं। पंजाब में यह लोहड़ी के रूप में नयी फसल की आने की खुशी में मनायी जाती है। पर छत्तीसगढ़ में यह कामदेव से जुड़ा है।

शिवजी समाधी में लीन में रहते हैं। कामदेव उनकी समाधी को भंग करने के लिए पुष्प बाण छोड़ते हैं और नृत्य करते हैं। बसंत पंचमी के दिन से कामदेव का नृत्य शुरू होता है जो होलिका के दिन फागुन पूर्णिमा के दिन तक चलता है। उसके अश्लील नृत्य के कारण महिलाओं को बाहर नहीं निकलने देते हैं। अण्डा का पेड़ सृष्टि के निर्माण का प्रतीक है, उसके बीज अंडाशय के आकार के होते हैं। इस समय का मौसम भी कामुकता को बढ़ाने वाला होता है। फाल्गुन पूर्णिमा के दिन शिवजी का तीसरा नेत्र खुलता है ओर कामदेव भस्म हो जाते हैं। रति के विलाप के कारण शिवजी कामदेव को प्रकृति में जीवित रखते हैं। पर उनका शरीर नहीं रहता है। यही कारण है कि नव विवाहिता को मायके भेज दिया जाता है। पुरूष के काम का दहन होता है। विवाह के प्रथम वर्ष की होली में पति पत्नी साथ नहीं रहते हैं। आज पति अपने ससुराल में जाकर पत्नी के साथ होली खेलने लगे हैं। दूसरों की देखा देखी छत्तीसगढ़ की महिलाएं भी होलिका की पूजा करने लगी हैं। छत्तीसगढ़ की आदि संस्कृति अब लुप्त हो रही है। शहर में तो पूरी तरह से समाप्त हो चुकी है। दूरदर्शन और सिनेमा में देखकर महिलाएं अपनी संस्कृति को छोड़कर बाहरी संस्कृति की ओर जा रही हैं।

छत्तीसगढ़ की धरती शैव और शाक्त की धरती है। शिव की पूजा होती है। शक्ति के बहुत मंदिर हैं इसके साथ ही साथ कुलदेवी के रूप में भी हैं। यहां नौ दिन और नौ रात का उपवास रखा जाता है। घरों में भी जंवारा बोया जाता है। मंदिरों में भी ज्योति कलश रखे जाते हैं और जंवारा भी बोये जाते हैं। छत्तीसगढ़ में बहुत शक्तिपीठ हैं यहां पर तांत्रिक पूजा भी होती है बलि भी दी जाती है। बलि देने की प्रथा अब दो चार जगहों पर ही है। जंवारा को महिलाएं नववस्त्र पहन कर तालाब में विसर्जन करने जाती हैं। जंवारा जिस दिन ठंडा होता है उस दिन प्रसाद के रूप में जंवारा दिया जाता है। कुछ लोग इसे एकदूसरे के कान में खोंस कर यानी लगाकर मितान बदते हैं, इसे आजकल फ्रेण्डशीप कहते हैं। छत्तीसगढ़ में मितानी प्रथा थी। इसमें जंवारा, भोजली, गजा मूंग, तुलसी दल, दौना पान बदा जाता है। यह अब पूरी तरह से समाप्त हो गया है। पाश्चात्य सभ्यता के फ्रेंण्डशीप डे ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया है। जिसमें एक बैंड बांध कर कुछ कुछ समय के लिए दोस्त बना लो। हमारे मितान तीन पीढ़ी के लिए जुड़ जाते थे और अपनों से ज्यादा गहरा सम्बंध बन जाता था। छत्तीसगढ़ में नवरात्र में जसगीत गाया जाता है। यह माता की सेवा होती है। इसकी धुन बहुत ही मोहक होती है। व्यक्ति भक्ति भाव में खो जाता है। पंजाब और हरियाणा में जो जगराता के नाम पर पूजा होती है उसमें कव्वाली की तरह गीत गाये जाते हैं। यह बहुत ही जोशीला होता है। कानों में तीखापन पैदा करता है। आजकल सेवा गाने वाले भी बहुत कम मिलते हैं। सेवा के गीत भी बदल रहे हैं। देवी की अराधना करने की और भक्ति में डुबने की संस्कृति बदल रही है। मंदिरों में पूजा करने का, चढ़ावा चढ़ाने का तरीका बदल रहा है। पहले देवी में पूरी साड़ी चुनरी प्रिंट की, चूड़ी, बिंदी, सिंदूर, काजल, कंघी, उपयोग करने वाले ही चढ़ावा ही चढ़ाया जाता था। जिसे अष्टमी के बाद प्रसाद के रूप में बांटा जाता था। पर अब सुहाग के नाम पर रूमाल की तरह चुनरी या बड़ी चुनरी, कंघी, काजल चढ़ाते हैं उसका उपयोग नहीं होता है। इसे घर ले जाकर पेड़ पर टांग देते हैं या फिर तालाब में विसर्जित कर देते हैं। यह उत्तर भारत की देन है। हमें कम से कम मंदिर के चढ़ावे में तो लौटना ही पड़ेगा।

पोला के पहले दिन धान की ''गरभ पूजा'' अब भी होती है। ''सउनाही'' गांव बांधने का काम अब बंद हो रहा है। अंधविश्वास हटाओ मुहिम के तहत यह खत्म हो रहा है। ''नागपंचमी'' के दंगल अब दिखाई नहीं देते। हरेली की गेंड़ी अब गांव में ही दिखती है। भोजली भी कहीं कहीं ही दिखाई देती है।

त्यौहारों के साथ गीत जुड़े थे। त्यौहार खत्म हो रहे हैं, स्वरूप बदल रहा है तो गीत भी लुप्त हो रहे हैं। शादी ब्याह में अब गीत खत्म हो चुके हैं। पांच दिन का विवाह एक दिन में सिमट गया है, बहुत सारी रस्में छूटती जा रही हैं। उसके गीत भी अब इतिहास बन रहे हैं। मारवाड़ी समाज में विवाह में गीत गाने वाली को बुलाया जाता है, पैसे देते हैं यह भी एक व्यापार बन गया है। छत्तीसगढ़ की संस्कृति को बचाने के लिए भी अब ऐसे ही गीत गाने वालों की जरूरत है, त्यौहार का स्वरूप बनाये रखने से संस्कृति बचेगी। आज छत्तीसगढ़ संक्रमण काल से गुजर रहा है। हम चाहें तो अपनी संस्कृति की ओर लौट सकते हैं। यही हमारी पहचान भी है।

सम्पादक की कलम से–लघुकथा

सकीना

नरेन्द्र सिंह परिहार
सम्पादक दिवान
04, उत्कर्ष अनुराधा
सिविल लाइन, नागपुर
पिन–440001
मो.–

आज सकीना बारह वर्षों बाद मुझे जब बस में यवतमाल जाती मिली तो देखकर आश्चर्य का ध क्का लगा। उसके साथ छै साल का एक लड़का था जिसे वह 'जाकिर' कहकर बुला रही थी। मुलाकात भी क्या थी, मैं बस में बैठा था और बस रवाना ही नहीं हो रही थी। इसी उहापोह में जब पीछे से किसी महिला की चीखने की आवाज आने लगी तो मुडकर देखा, वह सकीना थी।

वह कंडक्टर से पांच रूपये वापस करने की जिद पर बिफर रही थी, और कंडक्टर उसे कह रहा था जैसे ही चिल्लहर आयेगी दे दूंगा, कहता गिड़ागिड़ा रहा था।

''खूब जानती हूं, जानबूझकर पैसे नहीं देते, पता है न यवतमाल आ जायेगा तो हमको उतरना ही है, भूल जायेंगे। मैं ऐसी वैसी नहीं हूं, अभी निकाल।'' सकीना चिल्ला रही थी परन्तु जैसे ही मुझे देखा झेंप गई और ख़ामोश बैठ गई। अब मैं उसके पास आकर बैठ गया।

''सकीना! यह...''

''मेरा बेटा जाकिर है। चार को तो आप जानते हैं–असलम, जाफर, शबनम और गुलाम। सब बड़े हो गये हैं। असलम तो यवतमाल से ही बी.ए. करके मुम्बई में हैं। जफर डिप्लोमा करके पानी के जहाज पर चला गया। गुलाम ने गाड़ियों का धंधा पूना में शुरू किया है। शबनम के हसबेंड के साथ शबनम के दो बच्चे हैं साहेब और यह जाकिर पढ़ता ही नहीं। इसका बड़ा 'साला' भाग गया, बिल्लो के साथ। इसलिए बच्चे तो शर्म के कारण आते ही नहीं और मैं तो खान चाचा के ही साथ हूं। वही देख रेख करते हैं, काम दिलवा देते हैं, बस गुजारा चलता है।''

''कौन खान चाचा ?'' मैंने इतना ही पूछा।

''अरे! आप उन्हें नहीं जानते। अरे! आपकी पत्नी हिना अच्छी तरह से जानती हैं क्योंकि आपके बाजू में जब घर बन रहा था तब आपकी किचन की खिड़की से खान चाचा का कमरा दिखता था। मैं रोज उनका खाना बनाया करती थी। बहुत प्यार करते थे मुझे।'' यवतमाल बस में ऐसी वैसी बातें चलती रहीं। वह मिलने के वायदे के साथ चली गई।

मैं जब लौटा और हिना को सकीना के बारे में बताया तो वह खामोश होकर फिर बोली–''बेचारी, किस्मत की मारी। देखो न, मैं आज तक उसे गलत समझती मानती रही। वह खान चाचा को तब कोई सम्बोधन नहीं देती थी, उनके पांव दबाती, उन्हें सबके सामने फटकार देती, अपना हक चलाती। उसके घर में अपने आठ साल के छोटे से बच्चे को लेकर फिल्मी गाने गुनगुनाती। हम सभी उसके खान के साथ गलत रिश्ते तलाशते। पता नहीं क्या–क्या सोचते। मिश्रा भाभी तो अपने घर की खिड़कियां बंद कर देतीं। जवान होती बच्चियों पर गलत असर न पड़े । सिन्धी भैया तो चटकारे लेकर खान की किस्मत पर रश्क करते। अब क्यों न करें, तब खान पचास के थे और वह तीस की।

आज खान चाचा की इज्जत तथा सकीना की इज्जत हमारी नजर में बढ़ गई। सोचती हूं दुनिया आदमी और औरत को एक ही चश्में से क्यों नहीं देखती। और फिर खान तथा सकीना हैं इसलिए मजहबी चश्मा भी लगा लेती है। परन्तु उनका बाप–बेटी का रिश्ता कभी भी हमें समझ न आया था। अच्छा हुआ वह आपको मिली और यह बात समझ आयी। अब कभी मिले सकीना तो ले आना और जाकिर की पढ़ाई का खर्चा अब हम उठा लें तो कैसा रहेगा ? अब सकीना बूढ़ी भी तो हो गई होगी। काम कैसे होगा भला ?''

'अच्छा, ऐसा ही करेंगे।' बस इतना ही कह सका।

सम्पादक की कलम से–काव्य

मकड़जाल

रामचरण यादव
'याददाश्त'
सम्पादक नाजनीन
सदर बाजार
बैतूल–460001

कैद है खुशियों के उजाले
घूम रहे हैं सब घूमने वाले।
कोई बात सुनते नहीं बच्चे
इनके खिलौने इनके हवाले।
बिखरे हैं यादों के मोती
चाहे तो इनकी माला बनाले।
कैसे माने संसार सुखी है
आज भी गरीब को खाने के लाले।
मोह की मकड़ी फैली जग में
बुनती है ममता के जाले।
बचकर रहना तुम दुनिया में
आस्तीनों में ही नाग जो पाले।

अनबूझ बस्तर

अबूझमाड़ के
न बूझ सकने वाले जंगल की तरह
घने उसके बाल
केशकाल की बलखाती घाटी की तरह
उसकी कमर
अप्रतिम सौन्दर्य की मलिका
गोंचा पर्व की तुपकी की तरह
सजी संवरी अधखुली देह
फिर
परिजनों के लिए आराध्य
देवी दंतेश्वरी की तरह
न कोई छल
न पिपासा
आखिर वह है कौन
वह....वह है
बस्तरियों की
बहू, बेटी और मां!

शकुंतला तरार
संपादक–नारी का संबल
प्लॉट नं.–32 सेक्टर–2,
एकता नगर
गुढ़ियारी, रायपुर–492001
मो.–9425525681

काला पानी बस्तर

कभी कहलाता था यह
काला पानी
गुलशेर अहमद शानी के उपन्यास में भी
तब वहां जाने का मतलब
साधन विहीन दुर्गम रास्तों के बीच
कंटीली
पगडंडी
हिंसक वन्य पशु
जहां
अब नक्सलियों का राज है
विकास का मुद्दा
विकास की बातें
जानते हैं सब
विकास
संभव नहीं
जब तक बीहड़ों में
आतंक का राज है
वहां काला पानी आज है।

कुण्डलियां

चलने में संसार के, सहयोगी हर जीव;
बिगड़े यदि अनुपात तो, जीवन बेतरतीब।
जीवन बेतरतीब, जीव है सब उपयोगी;
इनकी संख्या घटी, होय जग निश्चित रोगी।
कह 'स्वरूप' कविराय, सभी को देवें पलने;
सबका यह संसार, सुचारू देवें चलने।।

आये नहिं हम पूछ कर, नहिं कोई भी जाय;
फिर क्यों इसके बीच की, चिन्ता हमें सताय।
चिन्ता हमें सताय, बिना पते का पत्र हूं;
जीवन कर्म प्रधान, एक अनिश्चित सत्र हूं।
कह 'स्वरूप' कविराय, सुजीवन को समझाये;
जीवन उसके हाथ, जगत न पूछकर आये।

जिसको जितना चाहिए, उतना ही रख पास;
सागर खारा हो गया, नहीं बुझ सकी प्यास।
नहीं बुझ सकी प्यास, सरस सरिता जल लेता;
मन से नहीं उदार, मेघ जबरन हर लेता।
कहि ''स्वरूप'' कविराय, संग्रहण करते किसको;
कब उड़ जाये जीव, जोड़ कर रखते जिसको।

कृष्ण स्वरूप शर्मा ''मैथिलेन्द्र''
सम्पादक मेकलसुता गीतांजलि म.आ.व.–8
शिवाजी नगर उपनिवेशिका नर्मदापुरम–461001
मो.–9424471249

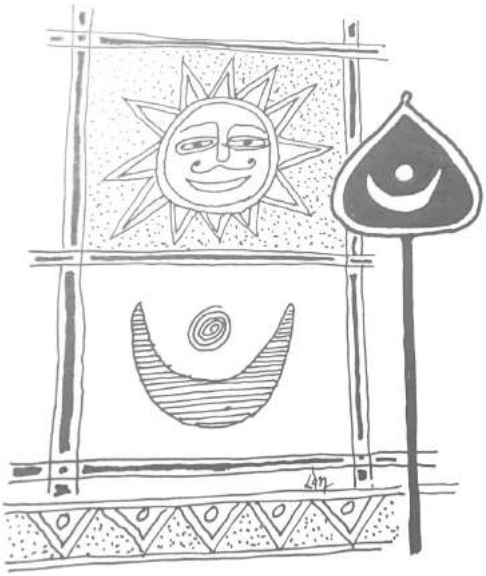

सम्पादक की कलम से

सपना

डॉ जयसिंह अलवरी
सम्पादक साहित्य सरोवर
दिल्ली हाउस,
सिरूगुप्पा–583121
जिला–बेल्लारी कर्नाटक
मो.–9886536450

कल तक लाड़ प्यार था, हंसी ठिठोली थी, एक साथ उठना बैठना था, एक साथ खाना पीना था। न तू–तू न मैं–मैं न रंजिश न नफरत। न मेरा न तेरा। न अपना न पराया। न छल–कपट। बरसता अगाध प्रेम था, उठती हृदयों में स्नेह की लहरें थीं, छलकता आंखों से नेह था। मगर.....आज अचानक एक ही छत के नीचे ऊंची–लम्बी दीवारें खिंची हैं। बोलना–चालना बंद है। एक दूसरे की सूरत से भी नफरत है।

यह कैसा परिवर्तन, कैसा बदलाव, कैसा बैर, कैसा द्वेश, कैसा ओछापन हावी है ? एक ही मां के लाल हैं परन्तु ओछेपन ने भुला कर सब दूर–दूर कर दिया है, टूटे हैं रिश्ते, सिसकते हैं नाते।

यह कैसी अज्ञान की बाढ़ है जिसमें ज्ञान–विवेक सब बहे जा रहे हैं। नैतिकता का पतन हुआ जा रहा है। अहं से अहं भिड़ा हुआ है। चिंगारी तो अभी लपेटे है, मिथ्या ही मिथ्या पल बढ़ रही है। सोच भ्रम के जाल में जकड़ी जा रही है। कदम उठे तो कैसे उठे, दल–दल गहरी हुई जा रही है। मति सारी मारी जा रही है। न दिलों में प्यार है न उमंग है, नीरसता का बोझ ढोये जा रहे हैं। बेल–विषैली इस तरह पल बढ़ रही है कि उच्च भावों को डसे जा रही है। ओछापन सवार कुछ इस तरह है कि भाई–भाई को काटे जा रहा है। प्यार–विश्वास अपनत्व गौरव सब सिमटे जा रहे हैं। सुबह से शाम तक होते नये–नये तरह के कलह हैं। छोटी–छोटी बातों पर बड़े–बड़े विवाद तो कभी जमकर हाथापाई है। नासमझों को कौन समझाये, समझ रखकर गिरवी नासमझ जो बने हैं। नन्हें नन्हें अबोध बच्चे देख इन डरावने ड्रामों को भयभीत हैं सुनने देखने वाले दंग हैं, असमंजस में हैं। आश्रित बेचारे आंसू बहाते हैं, बोलें तो क्या बोलें। दो जून की रोटी का जो सवाल है परस्पर स्नेह–प्रेम विश्वास जो था वो इस चकाचौंध आधुनिकता की आपाधापी की तपत में तप सबकुछ जलभुन गया है। नेह, नेह को तलाश रहा है, कभी सिसक तो कभी तड़प रह है। कड़वाहट के पहरे में लताड़ा जा रहा है। ढीले बंधन और फीके हर लगाव हो रहे हैं। ढला–ढला सबेरा बुझी–बुझी शाम और रोयी–रोयी रातें हैं। किरण भोर की कहीं नजर नहीं आ रही है। अंधेरा इस कदर छाया है कि लेते श्वास भी भय लगता है। मिल कर कुछ उपाय करने होंगे, बैठ कर बहुत कुछ विचारना होगा। बनी इन लम्बी–लम्बी खाइयों को पाटना होगा। धो मैल दिलों के मुस्काना होगा। गयी गुलशन की बहार लौटा लाना होगा। चौपाल की वे बैठक और पनघट के वे गीत फिर से लौटा लाने होंगे। जिसमें है जीवन का सच्चा आनंद उन भावों को दिलों में फिर सजाना होगा। बहके हैं जो उन्हें समझा सद्मार्ग की ओर लाना होगा। जो तड़प सिसक रहे हैं, घुट और बुझ रहे हैं समझ उन्हें दुख दूर करना होगा। पी रहे हैं जो विष का प्याला उन्हें अमृत का रसपान कराना होगा।

उतार इस भौतिकता के आवरण को और निकल के इस नकली चकाचौंध से कर प्रयास, ले संकल्प कुछ ऐसा करना होगा कि करे स्मरण आती हर पीढ़ी खजाना खुशियों का ऐसा अनोखा देकर जाना होगा।

कुछ रचनाएं अलवरी जी की

रोजी रोटी की तलाश में छूट गया घर बार।
खो गया भीड़ में सारा का सारा वो दुलार।।
बहता है जब–तब बहुत आंखों से पानी खारा।
खो गयी वे खुशियां फीका लगता है हर त्यौहार।।

करके याद न करना तुम आंखों को नम।
आयेंगे फिर तुम्हें अपना बनाने हम।।
रखना याद सदा इन कसमें–वादों को।
सजेंगे फिर साज न होना कभी बरहम।।

लौट आयेंगी फिर वे बहारें।
होंगे आलम में सब नये नजारे।।
आते झोंके राग नये लायेंगे।
फिर से सूने साज सजेंगे सारे।।

आओ मिलके बुझे चिराग जलायें।
फैले अंधकार को दूर भगायें।।
बढ़े जिनसे नित्य हर्ष ओ उल्लास।
कर कोशिश उन भावों को जगाये।।

कल फुर्सत में फिर कुछ नया लिखेंगे हम।
करके कोशिश चेहरों को पढ़ेंगे हम।।
न तलाशना कभी किसी महफिल में हमें।
भीड़ में मजलूमों के साथ मिलेंगे हम।।

अंकुर

डी. सूर्यप्रकाश राव
अधिवक्ता
जिला एवं सत्र न्यायालय
जगदलपुर
पिन–494001

वैसे तो, वह बहुत दिनों बाद आई। वह आई क्या? मैं तो चाहता ही था कि वह आये। मेरे करीब बैठी, और मेरे माथे पर लगी चोट को धीमें से सहलाने लगी।

''वापस ले लो समीर अपनी कसमें। बुला लो अपने पास। चन्द पल जो गुजरते हैं तुम्हारे साथ, वही है मेरी अमानत्, मेरी जिन्दगी। वरना इन बेबस साँसों का क्या? जाने कब रूक जाये?''

मेरे मना करने के बावजूद मैं जानता था वह आएगी! सारी बातों को भूलकर वह आई – मैं खुशी के दो शब्द भी न बोल सका।

''समीर तुम्हारी चुप्पी मुझे हमेशा सालती है! क्या तुम मुझे नहीं चाहते?''

यह अनामिका है, बिल्कुल मेरे हाथ की पाँच उँगलियों में से एक की तरह जिसे मैं चाह कर भी अपने से अलग नहीं कर सकता। वह मेरी आत्मा से जुड़ी है। कैसे कह दूँ अनामिका से कि, जितना मैं उसे चाहता हूँ कोई और भी उसे चाहा होगा? फिर वह भी तो चाहती है मुझे! कैसे पूछूँ अनामिका से कि क्यों नहीं मिली इतने दिनों से ..... मुद्दत से .....? इसमें मेरा दोष नहीं है।

मिश्रा चाचा को पढ़ाई के लिए किए गए खर्च का और उनके एहसानों का प्रतिदान तो संभवतः नहीं दे सकता। उस पर माँ और शराबी पिता की तमाम बातें, ... हुक्म । सब कुछ तो है, मुझे अनामिका से अलग करने के लिए।

अब मैं डॉक्टर हूँ प्राईवेट प्रेक्टिस् करने लगा हूँ। अपना खर्च उठा ही लेता हूँ। इन सब के बीच जैसे मुझे कुछ कहने का हक तो होता ही नहीं है!

इसी उधेड़ बुन में पता नहीं कैसे मुझे महसूस हुआ कि मैं अपने ही आफिस में हूँ ।

आज अनामिका क्या मिली, मस्तिष्क में एक तूफान सा उठ रहा है! आँधी तो वैसे वातावरण में भी है, लेकिन मेरे मस्तिष्क में उठी आँधी से कम ! अपने कमरे की खिड़कियाँ बन्द करता हूँ। आकर चुपचाप बैठ जाता हूँ। कमरे की सारी खिड़कियाँ, दरवाज़े, दीवारें, आहिस्ता–आहिस्ता मेरे करीब आने लगते हैं ! इतने करीब कि उनका दबाव मैं साफ महसूस करने लगता हूँ। मुझे लगता है कि थोड़ी देर यूँ ही बैठा रहा तो इनके बीच पिस कर रह जाऊँगा! मैं कमरे की खिड़कियाँ खोल देता हूँ। फिर भी राहत नहीं मिलती। शुद्ध हवा होती तो बात ही अलग थी! यहाँ तो धूल – कचरा और पता नहीं क्या–क्या है! क्या आँधी को थामा नहीं जा सकता? थामा तो जा सकता है लेकिन उसके लिए सामर्थ्य का होना जरूरी है! कम से कम वो सामर्थ्य तो मुझमें शुरू से ही नहीं था ।

फिर उसी तूफान में घिर जाता हूँ –

मुझसे क्यों नहीं मिलती थी अनामिका? इतने मुद्दत से नहीं मिली तो कोई वजह रही होगी! कितना लगाव है अनामिका का – मेरे साथ? लगाव है भी या नहीं? नहीं .... नहीं ..... ऐसा नहीं हो सकता! जरूर कोई वजह होगी! फिर मैंने भी तो मना किया था।

वह तो अपनों के बीच रहकर खुश रही होगी! सभी तो हैं उसके साथ माँ–बाप –भाई सब! मैंने ही कब जाना जिन्दगी को? जिन्दगी किसे कहते हैं? पतझड़ सी हो गई है मेरी जिन्दगी! चाहे जितना भी प्यार दो कोई पत्ता, फूल या अँकुर नहीं फूटता!

जिन्दगी के कितने मील वाले पत्थर गुजर गए तब कहीं अनामिका मिली ! अनामिका मिली भी तो कब? माँ बाप, बहन से अलग रहकर पढ़ते हुए कितने वर्ष हो गए। इतने वर्षों में मैंने कितना कुछ खोया है! और अनामिका से कितने गुना पाया भी!

जैसे तिनका है मेरी जिन्दगी! हल्की सी हवा में इधर–उधर हो जाती है मेरी समझ में नहीं आता कि मैं कौन हूँ? क्या हूँ? और यह कि क्यों हूँ?

मैं वस्तु स्थिति से अपना ध्यान हटाना चाहता हूँ। सुबह आये एक पेशेन्ट की फाईल में खो जाना चाहता हूँ! मेडिकल की मोटी–मोटी किताबें मेरे दिमाग पर बिछ जाती है। फाईल बंद करता हूँ। पलंग पर लेट जाता हूँ। आँखे मूँद लेता हूँ सब कुछ मेरे सामने घूमने लगता है।

नशाखोर – चपरासी बाप का लड़का मैं। माँ एकदम सीधी, बहन होकर न होने के समान, छोटी सी.....पिता जी शराब पीकर आते और माँ को पीटते .....बड़ी मुश्किल से घर खर्चा चलता था।

मेरे पड़ोसी एक शिक्षक थे! मिश्रा जी! माँ के दूर के रिश्तेदार। बेटे की प्रतीक्षा में उनको पाँच लड़कियाँ हुई!

मेरे पिता के स्थानान्तरण पर उन्होंने मुझे माँ से माँग लिया – बेटे की कमी को पूरा करने के लिये। मैं मिश्रा जी के यहाँ रहकर पला बढ़ा और पढ़ा।

उसके बाद पढ़ने शहर आया ! मुझे छात्रवृत्ति मिलती थी, कुछ खर्च मिश्रा जी उठाते थे। इस तरह मैं डॉक्टर बना। मिश्रा जी के परिवार में मैं इतना घुल मिल गया कि ब–मुश्किल अपने घर के लोगों को याद कर पाता था।

कॉलेज में पढ़ने के दौरान ही अनामिका मिली। वह मिली क्या? वैसे मैं चाहता ही था कि वह मिले।

एक दिन मैं लंच समय में अकेला बैठा था! अप्रत्याशित रूप से मेरे दोस्त के साथ अनामिका आ गयी। बातों के दौरान मुझ ऐसा लगा कि उसमें कहीं कुछ ऐसा है जो मुझसें भी है। ये सच था या मैं बेकार अपने आप से अनामिका का सामंजस्य मिलाने बैठ गया था! पूरे वक्त में वह एक पल भी अपरिचित नहीं लगी थी।

उसके बाद हम हर दिन मिलने लगे थे! एक दिन अनायास ही अनामिका ने मेरे माथे पर लगी चोट के निशान को छू लिया – ''अरे ! यह चोट कैसी ?''

मैंने उसे सब कुछ बता दिया! झूठ बोलने की बात ही नहीं थी मेरे शराबी पिता द्वारा दी गई चोट को अनामिका जानने लगी थी। वह जब भी आती मेरे माथे को धीमें से सहलाती थी, जैसे ..... अपने ही किसी जख़्म को सहला रही हो। दो वर्ष अनामिका के साथ कैसे गुजरे पता ही नहीं चला। जब भी वह आती दिल के एक कोने में नहीं पूरे दिल पर छा जाती थी! इतने कम समय में हम नज़दीक आ गये थे। लेकिन! अनामिका को लेकर एक डर बराबर बना हुआ था फिर हम जुड़ते ही चले गये!

इसी बीच मैंने अपनी प्रेक्टिस शुरू कर दी थी। पर एक दिन मिश्रा चाचा का पत्र आया –

''पत्र मिलते ही आ जाना।'' पत्र पाकर मैं उनके पास पहुँच गया था। खाना –खाने के बाद मिश्रा चाचा ने मुझे पास बिठाया!

''देखों बेटा, पढ़ लिख कर तुम अपने पैर पर खड़े हो गये हो! हेमलता भी बड़ी हो गयी है ! अब देखो ना हेमलता की कहीं और बात चलाएं तो कम से कम 20–30 हजार से कम रूपये में तो बात नहीं बनेगी, फिर तुम तो घर के ही हो! और हमारी स्थिति से परिचित भी! तुमसे भला क्या छिपाना!''

उफ! समुन्दर है जिन्दगी भी! कितने उत्साह, कितनी खुशी से प्रारंभ होता है – किनारा! और उस छोर तक पहुँच कर कितने उकता जाते हैं हम जाते – जाते!

हेमलता से विवाह की कल्पना मात्र से मैं सिहर उठा था! जिसके साथ बचपन में खेला और परिवार के एक सदस्य की तरह जिसे समझा उसी से विवाह बन्धन की बात मैं सोच भी नहीं सकता था!

कुछ समझ नहीं आया मिश्रा चाचा अपने अहसानों का कैसा प्रतिदान चाहते थे? उन्हें कैसे समझाऊँ कि हेमलता मेरी नजर में क्या है वह तो.....वह तो .....उफ्फ! कैसी विडम्बना है?

उस दौरान मनः स्थिति बिल्कुल खराब हो गयी थी! मैं पुनः अपने शहर आ गया था। घर में ही रहता था ना किसी से मिलना था, और न कहीं जाना ही हो पाता था।

यूँ ही कुछ साल अनमने ढंग से गुजरे! जिन्दगी चलने लगी, ठहराव होता ही कहाँ है! प्रेक्टिस की व्यस्तता में सारी बातें धुंधली सी हो गई थी!

कि इसी बीच एक दिन अनामिका मुझसे मिलने आई!

''मत मिला करो अनामिका जिन्हें हम बाँध नहीं सकते, ऐसे रिश्तों को खींचने से क्या फायदा ?''

वह चली गयी। डबडबाई आँखों से उसने देखा, वह दृष्टि भला मैं कैसे भूल सकता हूँ। अनामिका के बिना कितना अधूरा हूँ मैं! कितनी कमियाँ हैं अनामिका के बिना जीवन में? जिन्दगी एक परीक्षा है एक ही जगह पर कितनी जिन्दगियाँ हैं – सभी अलग–अलग! कठिन, सरल। फिर भी जीना तो सभी को है ना ! जीते ही है सब।

अनामिका के बिना मैं जी रहा हूँ! अनामिका का दुख मैं समझता हूँ! जाते समय अनामिका के ये शब्द –

– ''जिन्दगी के कुछ पलों में झाँक कर मत देखों समीर! ये क्षण इतने कठिन होते है कि आदमी को जीने नहीं देते! जो लोग इन्हें जीत लेते है वे ही सफल होते हैं!'' मेरे जीने के लिए एक सहारा है।

मैं कैसे समझाऊँ, अनामिका को, इन्हीं क्षणों में मेरी जिन्दगी सिमट कर रह गयी है! हवा के झोंके से खिड़कियाँ खुल जाती है – मैं खिड़कियाँ फिर बंद कर देता हूँ और लेट जाता हूँ।

मेरी समूची जिन्दगी में एक तूफान है जो कभी थमता ही नहीं! इस बीच अचानक पिता जी – माँ और बहन को लेकर मेरे पास आ गये थे मुझे खुशी इस बात की थी, कि पिता जी ने शराब छोड़ दी है। उन दिनों में चुप रहने लगा था! दो दिन

बाद पिता कहने लगे थे।

''समीर बेटे! हमने तुम्हारे लिए एक जगह रिश्ता तय किया है! सम्पन्न लोग हैं लड़की भी अच्छी है! हम चाहते हैं कि तुम्हारी शादी में जो दहेज मिलेगा, उससे तुम्हारे बहन के हाथ पीले करेंगे!''

जैसे सूखी हुई नदी से पानी निकालने की कोशिश की जा रही थी! जगह –जगह मुझसे अपने अहसानों का प्रतिदान माँगा जा रहा था। मिश्रा चाचा के दबाव भरे पत्र आने लग थे। तमाम लोग – तमाम बातें और तमाम झिड़कियाँ! अर्न्तमन का तूफान पूरे जोरों पर था, मैं फिर कमरे की खिड़कियाँ खोल देता हूँ, बाहर आँधी और तूफान पूरे जोरों पर था इसी आँधी में तीन चेहरे मेरे इर्द–गिर्द घूमते हैं – मेरे पिता, मिश्रा चाचा और अनामिका के चेहरे। ऐसे में मुद्दत बाद अनामिका का आना कितना बड़ा सहारा था, मेरे लिये!

मेरे मना करने के बाद भी वह आयी! निःस्वार्थ! अब कभी कुछ नहीं कहूँगा! ''मत जाओं अनामिका! मैं अपने जीवन के दिन यूँ ही खारिज नहीं होने देना चाहता! मत जाओ मुझे छोड़कर अब कहीं प्लीज मत जाओ!''

लगता है जैसे मेरे अंदर का तूफान थम गया है! मेरे जीवन में कई दिनों से कहीं गहरे तक दबा हुआ, सड़ा हुआ अंकुर फिर प्रस्फुटित हुआ है, अब वही अंकुर फिर पुष्पित और पल्लवित होगा सच!

पत्रिका मिली

अविराम साहित्यिकी
सम्पादक–डॉ.उमेश महादोषी
मूल्य–25 रूपये
पता–121इन्द्रापुरम, बीडीए कालोनी के पास, बदायूं रोड, बरेली उ.प्र.
संपर्क–09458929004

वजूद!

————————

खुले आसमाँ के नीचे
माँ और पिता दोनों सो रहे थे
मैं लेटा था अपनी आँखें बंद कर
दोनों के बीच
जैसे संस्कृति और सभ्यता के बीच
मानव विकास लेटा हो
जैसे बचपन में सोया करते थे हम
आज आँखें कस कर बंद कर रखी थी
जैसे नहीं खोलना चाहता था कभी
शायद! रूबरू नहीं होना चाहता था
सच के धमाकों से
बम के धमाकों से
जो बदल देते हैं जीवन को
आजीवन कारावास में
जहाँ शरीर तो मुक्त रहता है
मगर आत्मा कैद हो जाती है
आवाज आ रही थी
मेरी जमीन हिल रही थी
और हिल रहा था मेरा आधार
जिस पर खड़े होने की कोशिश
मैं बचपन से कर रहा था
लाख मिन्नतों के बावजूद
बम फट चुका था
चिथड़ों में समेटा गया था मेरा वजूद
दफनाया गया था उन्हें
यहीं मेरे दोनों ओर
जहाँ मैं सोने की कोशिश कर रहा हूँ ।

सुमित कुमार झा
शोधार्थी
सिलीगुड़ी, प. बंगाल
मो.–9800688441

मेरे राम

————————

एक अयोध्या राम की थी
एक अयोध्या आवाम की है
लोकमंगल की वो भावना
अब कहीं बस नाम की है
लगता है
राम अब नहीं आएंगे
मंदीर मस्जिद के इस होड़ में
वे खुद हीं वन चले जाएंगे
किसी से कुछ कहेंगे नहीं
जैसे नहीं कहा था सिद्धार्थ ने
जैसे चुपचाप लिखते रहे तुलसी
जैसे चुपचाप चली थी सीता
सब चुपचाप हो रहा था
भावना लोकमंगल की थी
आज कमंडल की है
ये कमंडलधारी
सत्ता के व्यभिचारी हैं
राम आदर्श हैं
वह सबकी बात मानेंगे
देख लेना
लोकमंगल के लिए
खुद ही वनवास सिधारेंगे

लाल अंगूठी

हम अक्सर लंच टाईम में अपना टिफिन खाकर स्कूल कैंपस से बाहर आ जाते थे। असल में, हमारा सरकारी स्कूल था और स्कूल कैंपस जैसा कि आजकल के पब्लिक शालाओं में देखने को मिलता है, वहाँ नदारत था। हमारा कैंपस हमारा क्लास–रूम ही था, वह भी तब–तक जब तक कि गुरूजी कक्षा में मौजूद हों।

उस रोज भी मेन रोड़ की ओर हम रूख किए थे। यह निश्चित था कि हमारे मनोरंजन के लिए कुछ ना कुछ वहाँ होगा। मुँह का जायका बदलने के लिए गोलगप्पे, देहाती मिठाइयाँ, मूंगफली, आईसक्रीम वाले हमेशा की तरह मौजूद रहते। स्कूल अहाते से लगा एसबीआई का बैंक था और सामने बस स्टैण्ड। बल्कि बस स्टॉपेज कहना ज्यादा सही रहेगा, बसें चँद मिनटें वहाँ रूकती और चल देतीं। पास ही दो–चार घने वृक्ष थे, उसी छोटे से स्पेस में हमारे लिए तमाशे रचे जाते। अक्सर तो पहलवानों की तस्वीरें लगाए देसी दवाइयाँ बेचने वाले अपना मजमा लगाते। जब अच्छी भीड़ इकट्ठा हो जाती, तो वैद्य जी अपनी दवाइयाँ के एक–एक फायदे गिनाते। उनके बोलने में जादू होता। हम गोल घेरे में एक बार जो आ जाते, फिर घंटों सुध न रहती। भले ही वहाँ हमारे काम की चीज नहीं थी। फैक्टरी आते जाते मजदूर अपनी सायकल थामे ठहर जाते। उनका लंच समय भी यही है। अक्सर तो भीड़ इतनी घनी हो जाती कि झाँकने तक को जगह नही मिल पाती।

हमें तब खूब मजा आता जब मदारी वाले मचलते सर्प या जादूगरों के तमाशे देखने को मिल जाते। फिर तो हम लंच के बाद वाले तीन पीरियड भूल जाते और फैक्टरी के मजूर लोग अपनी ड्यूटी!

उस दिन का तमाशा कुछ अलग था। जब भीड़ कम थी तभी हमने अपनी जगह बना ली थी। एकदम आगे। वे दो लोग थे। मोटरबाईक, एनफील्ड बुलेट – मुझे अच्छी तरह याद है। यह आदमी गठा हुआ था और उसके साथ वाला दुबला–पतला सा। वह दुबलावाला काली कमीज, काली पैंट में। कुछ देर तक दोनों पैंतरा करते रहे। अपनी अटैची खोला, बुलेट बाईक को भीड़ के बीच स्टैंड पर लगाया। कुछ ही देर में काली शर्ट–पेंटवाला आदमी बाईक पर लेट गया। कुछ आराम से। गठीला आदमी, जो चाल, हाव–भाव से ही गठीला, अपने आप पर विश्वास करने वाला दिख रहा था, लोगों को सम्बोधित करना प्रारम्भ किया। भीड़ कुछ ज्यादा इकट्ठा हो चुकी थी। वह बुलेट के चारों ओर घूम–घूमकर लोगों को सम्बोधित करते हुए, एक वृत सा बनाने लगा। तब हमें इसका बिल्कुल भी अहसास नहीं था लेकिन अपने आदमी को भीड़ के बीच बैठाकर वह मास्टर की तरह इसे सम्मोहित करने लगा। उसके शब्दों के क्या मायने थे आज कुछ भी याद नहीं। शायद उस वक्त भी मुझे कुछ भी अर्थ नहीं मिल पाया हो, बस हम तो जाने के लिए, तमाशों के लिए भीड़ का हिस्सा भर हुआ करते थे। मुझे लगता है अधिकांश के साथ भी यही बात थी– दोनों, क्या चल रहा है!

उसकी बातों में अर्थ ना सही दम जरूर था। बड़ा ओज बड़ा आवेश था उसमें। उसके तमाम हाव–भाव, मुद्राएं और उस गोल घेरे में हो रही गतिविधियाँ हममें उत्सुकता जगाती। हमें रोमांचित करती। हमारे पाँव ठहर गये। हम उस गठीले आदमी की बातें सुनते, उसकी मुद्राएं निहारते, जो अर्थहीन होते हुए भी हमें जड़ सा बना दिया था। जादू ! सम्मोहन! हम वहीं ठहर से गये थे।

भीड़ कब ठसा–ठस हो चली थी, पता ही नहीं चला। उसकी सारी बातों का एक मतलब निकलता था कि उसके पास कोई ऐसी चीज है जो षक्तिशाली है। वह लोगों के दुःख शोक, रोग, मनोकामना, सफलता, प्रेम, संतान इत्यादि की बातें कर रहा था। उसके पास ऐसा कुछ है जिसे पाकर इंसान मनचाही सफलता पा सकता है। वह अपनी जादुई चीज की ताकत नहीं, करिश्माई ताकत हमें बताना चाह रहा था। वह वहाँ लोगों के उद्धार के लिए, यानी हमारे लिए प्रकट हुआ था।

हम सब कुछ भूल चुके थे। मैं अपनी कदम, गुरूजी के डण्डे और भीड़ के पास की दुनिया। बस स्टॉप में लगातार बसों की सीटियाँ। ढाई बजे लंच टाईम खत्म होने की घोषणा करने वाली भोंपू की आवाज। पास के घने वृक्षों से आती पक्षियों की चहचहाटें! सब कुछ! तब हमारे अस्तित्व में दो ही बातें थी – एक वह गठीला आदमी और दूसरा बुलेट पर उकड़ू बैठा काले लिबासवाला उसका शार्गिद जिसे अब पूरी तरह से काली चादर में ढँक दिया गया था। उसके हाथ में कोई लाल सी जादुई चीज रख दी गयी थी।

सारी भीड़ मंत्रमुग्ध हो उसे सुन रही थी। गजब का आवेश और उत्साह का प्रदर्शन करते हुए गठिला आदमी भीड़ के किसी भले आदमी के पास जाकर ठहर गया। उसकी जेब से नोट निकालकर अपनी मुट्ठी में छिपाया और शार्गिद से पूछा,

''बता मेरे हाथ में क्या ..... ?''

थोड़ी देर सन्नाटा रहा। लोग सन्नाटे में थे। सचमुच में यह चमत्कार था। आँखे बंद, चेहरा चादर में छिपा– क्या यह बता पाएगा!

''रूपया है।'' – काली चादर वाले ने भीतर से कहा जो

अब भी उकडू बुलेट पर बैठा था। उसका उसका मास्टर भीड़ के एक कोने से पूछा, ''कितने रूपए का ?''

फिर सन्नाटा। भीड़ इस कौतुक में मगन सारी दुनिया भूल चूकी थी।

''दो रूपये का है।'' – वह चिल्लाया।

मास्टर अपनी बंद मुटठी खोलकर सबको दिखलाया। गजब! यह दो रूपये का लाल नोट ही था। सही है। एकदम सही।

वह दोगुने जोश से नोट को हवा में लहराया और भीड़ के गोल–गोल घूमने लगा।

''बताओ इस नोट का नम्बर क्या है ?''

थोड़ी देर सोचने के बाद उस काली लिबास वाले शार्गिद ने एक बार फिर सही–सही नोट क्रमांक बता दिया। मास्टर ने इसकी तफ्तीश की। एक–एक दर्शक के बीच गया, उन्हें दिखाया – ''देखिए, दो रूपये का नोट जिसका नम्बर बिल्कुल ठीक–ठीक बताया गया। इत्मीनान हो लीजिए।''

आश्चर्य! आश्चर्य! यह तो करिश्मा है!

जादू सर पर सवार था। उसने आगे कहा – ''जानते हैं यह ताकत कहाँ से मिली ? सिर्फ इस पत्थर की वजह से। यह लाल रंगवाला पत्थर! जो यह पत्थर ऐसे ही नहीं मिला, कुदरत का करिश्मा है। कृपा बरसती है इसलिए उसके पास उपलब्ध है। यह बेचने के लिए नहीं है, नहीं, यह तो उस्ताद का अपमान होगा, बेचने पर इस पत्थर का जादुई असर जाता रहेगा। यह मुफ्त है। यह उस कारसाज़ का हुक्म है। इसे दुनिया में फैलाओं। लोगों के पैसे नहीं सिर्फ दुआएं लो। लोगों के दुःख दूर करो। मनोकामनाएं पूरी करो।

यह है वो चमत्कारी पत्थर!''

इतना कहकर वह चमड़ेवाली अपनी अटैची खोला जो लाल अँगूठियों से भरी पड़ी थी। हथेली भर–भरकर वह अँगूठी लोगों के बीच बाँटने लगा। वह कह रहा था –

''छल्ले के लिए पाँच रूपये मात्र! सिर्फ पाँच रूपये!''

बड़ी तेजी से लाल अँगूठी बिक गयी। हाथों–हाथ। मुझे नहीं मालूम अगर मेरी जेब में पाँच रूपये होते तो मैं क्या करता। पाँच रूपए ? उस जमाने में पाँच पैसे में हम पाँच गोलगप्पे खाते थे। पाँच रूपया तो हमारे लिए स्वप्न था।

हरिवंश – मेरे पड़ोसी थे, जाने कब से ठीक मेरे बगल में खड़े थे। उन्होंने भी पाँच रूपए निकाले और अँगूठी खरीदी। हरिवंश को मैं ताऊ कहकर पुकारता था और तब वे कॉलेज की पढ़ाई करते थे। अँगूठी को मैंने भी करीब से देखा। लाल पत्थर और सफेद छल्ला! नहीं, तब मेरी उम्र चाँदी या ताम्बे में फर्क करने की नहीं थी। बस मैंने चाँदी–सोना का नाम सुना भर था।

मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, भीड़ में उपस्थित जिस किसी के पास भी कम से कम पाँच रूपये थे, उन्होंने अँगूठी खरीद ली थी।

आज सोचता हूँ, उस अजूबे बाजार को कैसे परिभाषित करेंगे। ना विज्ञापन ना कोई ब्राण्ड! पर अद्‌भुत् परिणाम! एकदम–जादुई!

पर इस तमाशे का अगला दृश्य लोमहर्षक है, कम से कम उस गठीले मास्टर और उसके शार्गिद के लिए। सच, ऐसा भी होगा, हममें से शायद ही किसी ने सोचा हो!

अचानक भीड़ से निकलकर एक मोटा, स्थूल सा व्यक्ति प्रकट हुआ। उसके स्वर ने सबको खामोश कर दिया।

''क्या आप बता सकते है कि मेरे हाथ में क्या है ?''

उसका स्वर तेज था। एकदम बुलंद!

''जी हाँ! मैं आपके शार्गिद से पूछ रहा हूँ। बताएं मेरी बंद मुट्ठी में क्या है?''

लोग सन्नाटे में आ गये। ये क्या! आखिर यह सब क्या हो रहा है! अब तक तो हम अँगूठी का चमत्कार देख रहे थे। उस लाल पत्थर का करिश्मा। लोगों के जेहन में एक सवाल तक नहीं। लेकिन इसने तो जैसे सबको जगा दिया, एक निर्दयी अलार्म घड़ी की तरह! या 'जागते रहो' की सीटी फूँकने वाले बहादुर की तरह।

जागते रहो। सावधान! अलार्म! खबरदार!

सचमुच कभी–कभी शब्दों का अर्थ ब्रह्मांड के दूसरे छोर तक फैल जाता है। तब मैं छठी क्लास का एक फेल होने वाला विद्यार्थी था, जिसे गणित में कुल जमा पाँच अँक सिर्फ इसलिए मिलते थे कि, पेपर कोरा रहता था। वे पाँच अँक सफाई के होते। ऐसा विद्यार्थी तब भला क्या इन शब्दों का अर्थ जानता। बस तब की अपनी कैफियत कैसी रही, आज यही बताने की चेष्टा है।

उस मोटे आदमी ने घर्र से हमारी नींद हलाल कर दी। हम सब की। हम सब मनोकामनाओं के आकाश में उड़ रहे थे। हमें जादुई ताकत हासिल हो चुकी थी। हम आकाश में उड़ रहे थे।

जाहीर था मास्टर ने इस अप्रत्याशित मौके का खूब प्रतिकार किया। यह चमत्कार ऐसा नहीं है, वैसा नहीं है। यह ये है, यह वो है, पर 'यह' नहीं और 'वह' है मगर ये नहीं। इत्यादि इत्यादि।

पर ये दलीलें बेकार गयी। यह मोटा आदमी कौदी घास छीलने यहाँ नहीं आया था। उसका जिगर फौलादी था और भारी पत्थर की तरह मास्टर के सर पर बजाने लगा –

''बकवास करते हो! जब किसी के जेब से रूपये निकाल कर बता सकते हो कि कितने का नोट है, उसका नम्बर क्या

है, तो यह क्यों नहीं कि मेरी मुट्ठी में क्या बंद है।''

यह अलग किस्म का तमाशा था, ऐसा होते हमने कभी नहीं देखा था। एकदम कल्पना से परे की चीज। ऐसा भी हो सकता है, ना भीड़ ने, ना इस मास्टर, न उसके बाप ने ऐसा सोचा होगा।

काली लिबासवाला अब भी बुलेट पर उकड़ू बैठा था।

''घड़ी .....।'' उसने बस इतना ही कहा।

हम सब का ध्यान उस काली साया की तरफ खींच गया। मैंने देखा गठीले बदनवाला मास्टर, जो मोटे आदमी के शब्दों की मार को सम्भालने में लगा था, अपने शार्गिद को मुड़कर देखा, कुछ हैरान सा!

हम सब हैरान थे। मोटे की बंद मुट्ठी में सचमुच घड़ी थी। उसने अपनी मुट्ठी से घड़ी को आजाद किया, गेंद की तरह हवा में उछाला और कहने लगा, ''कौन सी घड़ी और इस घड़ी का नम्बर क्या है ?''

हम समझ गए वह मैदान हारने के लिए नहीं उतरा था, उसकी बजाने के लिए उतरा था।

उसकी बंद मुठ्ठी में घड़ी है – सही है, मगर काली चादर के भीतर से उस शार्गिद को कैसे पता चला! थोड़ी देर के लिए हम चकित थे। मगर उस मोटे ने हमें अधिक हैरान होने का मौका नहीं दिया और अपने प्रश्न घड़ी के साथ–साथ आकाश में उछालता रहा, स्वयं ही कैच करता रहा। उछालता रहा, कैच करता रहा।

''जब तुम बिना देखे कि जेब में नोट रखा है कितने का नोट और नोट का नम्बर सही सही बता सकते हो तो मेरे घड़ी की कम्पनी और नम्बर क्यों नहीं।''

मास्टर को घूंट भर पानी मिल चुका था अपना सूखा गला तर करने को, उसने फिर से कुछ ऊँची आवाज में हील–हवाला देना शुरू किया। वही, कुछ वैसा ही, लगभग जैसा कि, अभी–अभी, थोड़ी देर पहले, वही जो उसने किया था – उसकी मुद्राएं, उसकी भाषा, उसके स्वर कुछ ऐसा कह रहे थे – देखिए! ऐसा नहीं होता। वैसे होता है। उसमें ये है 'वो' नहीं। ऐसा है मगर वैसा नहीं। यह नहीं है वह है। अगर नहीं मगर है। जम नही जाम है।

इत्यादि इत्यादि!

कुछ पल इसी तरह बीते। भीड़ में कइयों ने सोचा होगा कि अब वह शागिर्द घड़ी का क्रमांक और कंपनी का नाम बता देगा, लेकिन काली मूर्ति बता मूर्तिवान बना चुप रहा।

मोटे आदमी ने रौब से कहा, ''खबरदार! अभी के अभी अपना बोरिया–बिस्तर समेटो और लोगों का पैसा वापस करो। अभी। वरना पुलिस बुलाता हूँ और यहीं सबके सामने तुम्हारी लूँगा और ऐसी लूँगा कि याद रखोगे, नगीने और छल्ले हमेशा के लिए भूल जाओगे। दफा हो यहाँ से.....।'' मोटे ने घड़ी अपनी कलाई में बांधी। उस जमाने में ज्यादातर चमड़े के बेल्ट हुआ करते थे मगर मुझे अच्छी तरह याद है उसने स्टीलवाली वाली चेन पहन रखी थी।

मास्टर समझ गया उसका भंडाफोड़ हो गया है। चुपचाप यहाँ से निकल लो – इसी में भला है।

जिस तेजी से उसकी अँगूठी हाथों–हाथ बिकी थी, उसी तेजी से हाथों–हाथ वापिस भी हुई। उसने तत्काल सभी को रूपये वापिस किए और लोगों ने उसकी अँगूठी।

चँद मिनटों में ये तमाशा खत्म हो गया। सारी अँगूठी उसी चमड़े की अटैची में पैक हुए। फिर वह अपने शार्गिद के सर से काली चादर उतारा।

सर झुका, भीड़ से नजरें चुराते हुए काली लिबासवाला शार्गिद उठ खड़ा हुआ। हम सबने देखा – मानों वह गहरी निंद्रा से उठा हो, एकदम गहरी निंद्रा से, आंखे मिचता। भीड़ से अब कुछ भिन–भिन सी आवाज आने लगी सन्नाटा टूट चुका था। तमाशा हम बस जो सम्मोहित होकर देख रहे थे, अब हमें समय और स्थान का ख्याल आने लगा था। ढलती धूप हमारे चेहरे पर गिर रही थी। स्कूल की छुट्टी भी शायद होने वाली थी और हम बस स्टॉप की ओर से बसों की आवाजें और खलासियों की सीटी भी हम सुनने लग गये थे।

वो दोनों अपनी अटैची सम्भाले, बुलेट स्टार्ट की और भीड़ ने बा– इज्जत उन्हें विदा किया। ससम्मान रास्ता दिया। जब तक वो चले नहीं गये बोला नहीं डर रहा शायद ये कि किसी ने भी उस एक के सिवा कोई सवाल नहीं किया। चीजें बेचते वह या चीज वापिस करते वक्त सिर्फ लोगों ने आज्ञा मानी । चुपचाप ! बिना किसी सवाल या शंका के!

नहीं! ऐसा नहीं था कि किसी ने आज्ञा नहीं मानी। मैंने देखा कि हमारे पड़ोसी हरिवंश ताऊ ने तो खरीदी हुई अँगूठी अपनी जेब में छुपा ली थी। उन्होंने उसे वापिस नहीं की थी।

क्यों ? – मेरे भीतर स्वाभाविक जिज्ञासा थी कि मैं जानूँ। आखिर अंगूठी उन्होंने क्यों वापिस नही की ? भीड़ हट चुकी थी और मैं हरिवंश ताऊ के साथ घर की ओर चल पड़ा था। मजदूरों का रेला हमारे साथ–साथ लौट रहा था, वे घंटी बजाते और कुछ गीत गाते। रास्ते भर मैं इधर–उधर की भूमिका बाँधता रहा और यह पूछने की हिम्मत जुटाने का अभियान करता कि वो सवाल दागूँ – क्यों आपने अँगूठी रख ली, एकदम से चोरों जैसे!

मगर मैं चुप रहा। हिम्मत नहीं हुई या पता नहीं उनकी आस्था का कौन सी अदृश्य दीवार थी जिसे मैं लाँघ नहीं पा रहा था। या फिर उनके प्रति सम्मान! के मेरे पड़ोस के ताऊ थे। अक्सर उनके यहाँ मकर संक्रांति के दिन दही–चूड़ा और

तिल के लड्डू खाया करता था। शायद इस लिहाज के कारण। या फिर, मेरा मन यह जानता था कि, ऐसे सवाल उनके दिल को चुभेंगे। शायद यह रहस्य मेरा मन जानता हो। ठीक–ठीक कह नहीं सकता। बस, मैं इस बाबत् कुछ पूछ नहीं पाया और घर आ गया।

जब हम घर पहुँचे तब सूरज ढल चुका था। बच्चे मैदान में और गलियों में धमा–चौकड़ी मचा रहे थे। कुछ बूढ़े चौराहों पर बैठे तम्बाखू मल रहे थे।

मैंने मन ही मन विचार किया, आज नहीं, कल आपके घर आऊँगा और अपने सवाल पूछूँगा।

रात को नींद आने के पहले तक वही सवाल मेरा पीछा करता रहा। हरिवंश ताऊ ने आखिर उस अँगूठी में क्या पाया, क्या देखा कि अपने साथ लिए चले आए। मैं उस मोटे आदमी और मास्टर तथा उसके शार्गिद की बात लगभग भूल ही चुका था।

कल आया और परसों भी। नरसों भी आया। अब रोज मैं हरिवंश ताऊ के घर अपनी हाजिरी बजाता। वहाँ वही एक सवाल!

मैं यह कल्पना करता कि आज लाल नगीने वाली सफेद छल्ले में जड़ी अँगूठी उनके रिंग फिंगर में देखूँगा और फिर पूछ डालूँगा। पर आश्चर्य की तीन दिन बीत गये और हरिवंश ताऊ ने उस अँगूठी को धारण अब तक नहीं किया था। मेरी जिज्ञासा तीव्र हुई और उनके घर की आलमारियों उनकी पुस्तकों के रैक टेबल–दराज या उनका पर्स, उनकी कमीज पैंटों की जेबों की चुपचाप तलाशी लेना शुरू किया यह जानने के लिए कि अँगूठी आखिर है कहाँ। पहना तो क्यों नहीं। यह कि वह जादुई अँगूठी कहाँ गायब हो गया ? या, यह सब कुछ मेरा ही एक भ्रम था, अन्य लोगों की तरह हरविंश ताऊ भी अँगूठी वापिस कर चुके हों। मगर नहीं रास्ते भर वे अँगूठी अपनी जेब से निकाल निकाल कर बड़े प्यार से निहारते रहे थे। मैं भी देखता। एक बार छुआ भी था।

नहीं ! भ्रम का सवाल नहीं।

साफ–साफ पूंछ लेने की हिम्मत मेरे भीतर कहीं से भी दाखिल हो नहीं रही थी। कहाँ गयी वो अँगूठी ? इस नये सवाल ने पुराने सभी सवालों को ध्वस्त कर दिया। मेरे खेल और पढ़ाई का अधिकांश समय हरिवंश ताऊ के घर भेंट होने लगा। मेरी चोर निगाहें उनकी चोरी पकड़ कर सामने लाने को बेताब थी।

हममें हर तरह की बातें होती, लेकिन ना मैं अँगूठी के बारे में कुछ पूछता ना उन्होंने ही हमें कुछ बताया। अँगूठी और उस तमाशे के बारे में एक लफ्ज हमारी बात नहीं होती। इस बीच जैसे ही हमने लाई और गुड़ की बनी मजेदार मिठाइयों का पहले जैसा मजा लिया।

महीना बीत गया। सवाल ने धीरे–धीरे अपना तेज कम कर दिया था। दिन ढल चुका था, साँझ करीब थी। तभी मैंने ऐसा कुछ देखा जिसकी कल्पना ना मैंने की थी ना मेरे बाप ने।

अब तक उस अँगूठी को लेकर मेरी कल्पना.....कई चक्कर काट चुकी थी.....कई तरह के प्रोजेक्शन! कई प्रक्षेपण। कई–कई संभावनाएं कई–कई कयास, मसलन 'ये' हुआ होगा उस अँगूठी के साथ मसलन इस कारण ताऊ अँगूठी नहीं पहनते होंगे। वगैरह–वगैरह! मगर हकीकत इन सबसे पृथक निकली। और यह सब मैंने अपनी फटी आँखों से देखा।

हरिवंश ताऊ के कमरे में एक कोने में एक छोटा सा पूजागृह था। वहाँ दो–चार छोटे–छोटे भगवान की तस्वीरें फ्रेम में जड़ी थी और एक रामायण की पोथी जो लाल कपड़े में लपेटी हुई थी। यहीं ताऊ रोज सवेरे–साँझ अगरबत्ती दिखाकर मंत्रों का उच्चारण किया करते। मैंने उन्हें पूजा करते कई बार देखा था। मगर हैरानी मुझे इस बात पे नहीं थी, हैरानी तो हुई उस लाल पत्थर वाली अँगूठी को देखकर जो बड़े पवित्र भाव से लाल कपड़े में लिपटी उस रामायण पर रखी हुई थी। जिन्हें रोज–रोज अगरबत्तियों का धुआँ पिलाया जाता रहा था।

मर गये बाप।

तो अब समझ में आया! जी! तो कहाँ मैं उस अँगूठी को उनकी जेब और पर्स में ढूँढता फिर रहा था।

उस एक दृश्य ने पिछली कई मेरे सवालों के जवाब दिए लेकिन फिर एक नए सवाल ने साथ–आखिर यह सब क्या था, और क्यों ?

ताऊ मेरे लिए पूरी तरह अबूझ बने रहे। मुझे अब तो और गहरे रहस्य से भरे हुए!

मैं रातों को सोचता, पिछले बीते दिनों में हरिवंश ताऊ के साथ ऐसा क्या कुछ चमत्कारिक हुआ। अब तो स्पष्ट था कि वो उसकी पूजा कर रहे हैं। उनका घर, घर के छज्जे, दीवार, दरवाजे, खिड़कियाँ सब वैसी। अपनी जगह सलामत! हरिवंश ताऊ भी अपनी जगह सलामत। वही कुर्ते, वही पैजामा, वही उनकी मूँछे और बाल। उनका भोजन भी वही। उनका जूता भी वही। सबेरे उठता तो उनके छत की ओर देखता कि किसी पँछी ने सोने के अण्डे तो नहीं दिए। या कहीं वो चाँदी की बरसात तो नहीं हुई। सिवाए सूखे पत्तों के मुझे वहाँ और कुछ नजर नहीं आता। अलबत्ता कभी–कभार छज्जों पर कौवें काँव–काँव करते जरूर दिख जाते। मैं अब भी किसी चमत्कार की प्रतीक्षा में था। हरिवंश ताऊ से कहीं ज्यादा। चमत्कार तो एक पल की धारणा है जाने कब घट जाए।

पर, सालों बीत गये। मैं इन बातों को धीरे–धीरे भूल सा गया। पर हाँ, न जाने क्यों हमारे बीच इस बारे में कभी भी कैसी भी बात नहीं हुई। ना मैंने कोई प्रश्न पूछा ना ही उनकी ओर से कुछ बातें हुई और एक दिन हरिवंश ताऊ उच्च शिक्षा के लिए कहीं दूर चले गये, शायद दिल्ली। कहते थे आईएएस बनना है। फिर हम भी किसी और कालोनी में रहने लगे। मैं बच्चे से जवान हुआ और आज रिटायर हो चला हूँ। बचपन की सारी बातें लगभग स्मृति से ओझल हो चुकी हैं।

एक बार कहीं कुछ पढ़ते हुए अचानक वो गाँव के हरिवंश ताऊ की तमाम स्मृतियाँ जेहन में ताजा हो गयीं। हमने कहीं पढा–अटूट विश्वास का नाम आस्था है। बिना आस्था ईश्वर कहाँ!

आस्था! ईश्वर!

प्रतीत हुआ मानों उन पँक्तियों में बचपन के सारे सवालों के जवाब मिल गये हैं। हरिवंश ताऊ के जरिए उत्पन्न सारे सवालों के जवाब! मैंने देखा है अटूट विश्वास! जी हाँ। वह उनकी अँगूठी। वह उनकी पूजा भावना। चाहे कोई चमत्कार हो ना हो।

मेरे लिए यह सब किसी चमत्कार से कम नहीं था। हाँ! मुझे मिल गये मेरे बचपन के अनुत्तरित प्रश्नों के हल! बिलकुल ठीक यही। जी!

मैं उत्साह से चमक उठा मानों सनातन से छिपा हुआ खजाना ढूँढ लिया है।

पुस्तक की उन पँक्तियों को अंडरलाईन किया।

आस्था! ईश्वर! अटूट विश्वास!

हाँ। उस एक पँक्ति ने मेरे भीतर फिर से उन दृश्यों को जिंदा कर दिया था। लाल अंगूठी, गठीला मास्टर और काली लिबास में उकडू बैठा वह शार्गिद और वह मोटा फौलादी आदमी..... हवा में उछलती वह घड़ी.....।

मुझे सब कुछ याद आने लगा।

वह उछलती घड़ी..... उस घड़ी ने एक अद्‌भुत् समय की व्याख्या की थी। उसने हमें बताया था कि कैसे एक पल में पत्थर भगवान बन जाते हैं।

उस घड़ी ने हमें यह भी बताया था कि कैसे दूसरे ही पल भगवान फिर से पत्थर में तब्दील हो सकते हैं।

लेकिन वो घड़ी हरिवंश ताऊ के बारे में मौन थी – वह क्या था – अटूट विश्वास या अटूट अंधविश्वास ?

पता नहीं।

बस्तर पाति फीचर्स

मैं श्रमिक हूँ

हर्ष लाहोटी
कोण्डागांव
मो.–9589333342

हाँ मैं श्रमिक हूँ
देश का सारा बोझ उठाता हूँ
कोल्हू के बैल की तरह जोता जाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
धन बल से मै ठगा जाता हूँ
अक्सर अकारण छला जाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
दो रोटी के लिए पैसा कमा कर
बमुश्किल घर खर्च चलाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
ऊँची बड़ी इमारतें बनाता हूँ
पर सारी जिंदगी झुग्गी में गुजार जाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
धरती खोद कर सोना निकाल कर लाता हूँ
पर कभी उस सोने को भोग नहीं कर पाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
भरी दोपहरी में पसीने से तरबतर बोझ उठाता हूँ
पर चंद पैसों के लिए भी छला जाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
कुछ खाने भूख मिटाने
मैं झूठे बर्तन मांज लेता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
पढ़ा लिखा कम हूँ इसलिए
अक्सर अपने हक की लड़ाई हार जाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
मेरी कोई जाति नहीं
मै असली हिंदुस्तान कहलाता हूँ

हाँ मैं श्रमिक हूँ
देश के हर निर्माण में भागीदार हूँ पर
पलट कर जब भी पीछे देखता हूँ खुद को अकेला पाता हूँ

चिट्ठी आई है...आई है...चिट्ठी आई है....

दादाजी की चिट्ठी

मेरे प्यारे पोते सौरभ

कैसे हो ?

यहां कोण्डागांव में सब ठीक हैं तुम बताओ वहां दिल्ली में तुम्हारी कैसी कट रही है ? इन दिनों तो वहां खूब गर्मी पड़ रही होगी, मैं जानता हूं दिल्ली की गर्मी और ठण्ड भी। अब तो घूमने–फिरने की इच्छा ही नहीं होती है। अपना शहर ही ठीक लगता है।

मैं कहां अपनी बात लिए बैठ गया। और तुम बताओ रोजी –पानी के अलावे तुम्हारी मौज–मस्ती कैसी चल रही है। मुझे पता चला कि तुम अपने दोस्त मनोज की शादी में चण्डीगढ़ गये थे और तुमने खूब धमाल किये। शिकायत नहीं कर रहा हूं यह तुम्हारी उम्र है और मस्ती–शादी तो इसलिए ही बने होते हैं। एक दिन सेहरा तुम भी तो पहनोगे, लोग बाराती बनेंगे, तुम दूल्हे बनोगे। जानते हो ये 'सेहरा' ये दुल्हापन सिर्फ एक दिन का या यूं कह लो चंद दिनों का होता है। कहते हैं न! एक दिन की बादशाह! जब सभी तुम्हें देखेंगे। बाराती और शहराती सभी। जीता रहा तो जरूर तेरी शादी देखूंगा और हां, बैंड बाजे में डांस भी करूंगा। लोगों को कैसे पता चलेगा कि मेरे पोते की शादी है। खैर!

मैं कह रहा था तुम्हारी शादी में जो धमाल–बाजा होगा वो तो आज के दिनों जैसा होगा.....यानी कि बड़ा सा डेक, शोर और केवल शोर.....। नशे में धुत् तुम्हारे साथी झटके मारते! बिना अनुशासन!

तुम कहोगे मैं क्या लेकर बैठ गया, चलो मैं तुम्हें अपने समय की बैंड पार्टी की कुछ बातें बताऊं।

सुनो, मौज मस्ती हमारे समय मे भी हुआ करती थी, मगर हम कुछ अनुशासित थे। युवा पीढ़ी शराब पीती थी मगर चोरी से और बड़ों का लिहाज रखकर। शराब पीने के बाद वो बड़े बुजुर्गों से कटते थे। लिहाज रखते थे। आंखें नीची करके चलते थे। खैर! मैं बैंड पार्टी की बात कर रहा था। कहा न कि हमारे समय में अनुशासन था सो बैंड बाजे भी खूब अनुशासित थे। साजिंदों का अपना एक ड्रेस कोड होता था, सर पे कैप। पैट्रोमेक्स की रोशनी महिला श्रमिक भी एक कतार में लिए चलती थी। अक्सर इन भारतीय बैंड–पार्टी का नाम कुछ इस तरह का होता था–गुरू–कृपा बैंड पार्टी, अंसारी बैंड बाजा, अलबेला बैंडवाला, गोपालकुंआ का धुधूक. .....इत्यादि। गांवों और छोटे कस्बों में तब ये बैंड–पार्टी वाले रियाज करते दिख जाया करते थे। चूंकि शादियों के सीजन सीमित होते हैं, हिन्दु मुस्लिम और ईसाइयों की शादियों में इनकी मांग खूब रहती थी और विवाह के मौसम में इनकी रोजी–आय अच्छी चलती थी। शेष समय में ये कुछ और धंधा कर पैसा कमाते थे। अक्सर ये लोग पुश्तैनी कारोबार की हैसियत से ये हुनर सीखते थे। बड़े ड्रम, क्लारिनेट, ट्यूफोनियम, ट्रम्पेट, धुधूक इत्यादि इनके साज हुआ करते थे। बजाते हुए ये न सिर्फ अनुशासन में होते थे वरन ये एक तरह से परेड करते हुए संगीत का आनंद प्रदान करते थे। यह इनकी खासियत थी। गाने तो लोकप्रिय फिल्मी ही हुआ करते थे। जानते हो बहुत से साजिन्दे जो फूंक मार कर धुनें निकालते थे–वे बुढ़ापे में अक्सर खांसी, टीबी या सांस की बीमारियों से ग्रसित हो जाया करते थे। इन साजों में फूंक मार कर धुनें निकालने में दम लगता था। हम मौज मस्ती में इनकी तरफ ध्यान कहां दे पाते हैं। जानते हो इन फूंकमार साज में एक धुधूक हुआ करता था। हर ब्रास बैंड पार्टी में अनिवार्य! इसे ट्रम्पेट का विशाल रूप समझ लो। इसका काम बीच–बीच में सिर्फ 'धूं–धूं' की भव्य आवाज ही निकालने का होता है। इसमें न राग थी न रागिनी–तुम कहोगे हमारे समय में हर चीज अनुशासित थी, फिर इस बैंड पार्टी में यह बिना राग वाला साज क्यों ?

मेरे बेटे! तुम्हारे मन में उठ रहे सवाल से मैं पूरा इत्तेफाक रखता हूं। पर अभी कहा न, हर दौर में हर चीज हुआ करती थी, जैसे नशा या मदिरापान हमारे समय में भी था–और आज भी है। अंतर तुम समझ सकते हो। आज खुलापन है–मैं तो कहूंगा बेशरमी आ गयी है।

मेरे पोते! हमारी सभ्यता कब नहीं 'हॉकिंग–भोकिंग' रही है ? धुधूक! बिना राग–रागिनी के हमेशा से रहे हैं। तुम जरा अपनी नजर उठाओ और देखो! जहां ऊंची आवाजें हैं वहां कोई राग–रागिनी नहीं हैं–और संगीत! शायद तुम कभी खामोशियों की धड़कनें सुन सको!

इसी शुभेच्छा के साथ!

शेष बातें फिर कभी!

तुम्हारा दादा

भीष्म पितामह

(तुम्हारा दिया हुआ नाम)

प्यारे पाठकों, नमस्कार

हम सभी कहानी, लघुकथा और आलेख में हाथ आजमाते हैं। गद्य की अन्य विधायें रह जाती हैं। हम अपनी बात गद्य की अन्य विधा में किस तरह कह सकते हैं, ये अब से बस्तर पाति के अंकों नियमित आया करेगा। उपरोक्त उदाहरण पत्र विधा का है। जिसमें दादा अपनी बात बड़े ही सुंदर ढंग से अपने पोते को बता रहा है। जो सीख वह अगली पीढ़ी तक पहुंचा रहे हैं संकेतों की भाषा है। इस विधा में भी हम अपनी बात रोचक ढंग से पाठक तक पहुंचा सकते हैं।

वर्तमान परिवेश में नैतिक शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास की प्रासंगिकता आचार्यश्री विद्यासागर की रचनाओं के संदर्भ में वर्तमान परिवेश में

जैनमुनि, संतकवि, आचार्यश्री विद्यासागर की रचनाओं के संदर्भ में शिक्षा प्रणाली, शिक्षा में नैतिकता, व्यक्तित्व निर्माण हमारी संस्कृति के वर्तमान परिवेश में प्रासंगिकता का अध्ययन

मधु जैन
16–महावीर नगर
आइसेक्ट कंप्यूटर के सामने
धरमपुरा, जगदलपुर–494001
मो.–9425259262

साहित्य सृजन में, संत कवियों का सृजन, समाज को यथार्थ चित्रित करने वाला रहा है। संतकाव्य, आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना स्थापित करने में सहायक रहा है। क्योंकि, आचरण की पवित्रता, सात्विक साधना और कार्यसंस्कृति का संदेश इनके आचरण और कार्य में दिखाई पड़ता है। तभी वह जन मानस के स्मृति पटल में युगों तक संरक्षित रहता है। समाज के सजग प्रहरी के रुप में ये संत अपने साहित्यसृजन से सुधार का शंखनाद करते हैं।

वर्तमान परिवेश में आज जहॉ मानव भौतिकता के चकाचौंध ा में गुम होकर, स्वयं को खाली कर रहा है वहॉ आज शिक्षा के क्षेत्र की बात करें, तो भारत की समृद्ध गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को ध्वस्त कर, मैकाले ने देश को गुलाम बनाने के उद्देश्य से संस्कृति और शिक्षा को नष्ट किया। जिसके फलस्वरुप हम प्रत्यक्ष तो आजाद हैं पर मानसिक रुप से गुलाम हैं। हमारी शिक्षा पद्धति भारत की मूल नब्ज से दूर हो गयी है और हम हमारे मूल ज्ञान से वंचित हो गए। शिक्षा से नैतिकता दूर हो गयी, तो व्यक्तित्व विकास कैसे संभव होगा। जबकि, आचार्यश्री के अनुसार, ***"शिक्षा जीवन का वह पवित्र संस्कार है, जो हमको मानवतावादी सिद्धान्तों पर चलना सिखाता है" 1।***

इस विचार से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का मूल उद्देश्य क्या होना चाहिए। शिक्षा हमारे भीतर सुप्तावस्था में मौजूद ज्ञान को जगाने का कार्य करती है और यही आत्मबोध, जीवन के सफर में स्थापित होने के लिए तैयार करती है। जब तक शिक्षा में, जीविकोपार्जन का प्रयोजन शामिल न हो, वह व्यर्थ मानी जाती है। किन्तु शिक्षा का एक महत्वपूर्ण प्रयोजन नैतिक समृद्धि का भी है। जबतक व्यक्ति के विचारों में नैतिकता की जड़ें मजबूत नहीं होंगी वह पूर्ण व्यक्तित्व का स्वामी नहीं कहलाएगा।

जिस प्रकार धन अर्जन के लिए यदि व्यक्ति बुरे मार्ग को अपनाता है, तो उस धन का कोई औचित्य नहीं होता। उसी प्रकार आज का शिक्षित समाज यदि संवेदनशील नहीं होता, तो उसकी शिक्षा व्यर्थ मानी जाती है। शिक्षा के संदर्भ में सही शिक्षा, व्यक्ति में नम्रता का भाव लाती है। बुराई के रास्ते को छोड़कर सदमार्ग की राह दिखलाती है। आचार्यश्री इस विषय में कथन का अन्वेषण करें तो, स्वतः ज्ञात होता है कि, ***"शिक्षा मनुष्य के व्यवहार व संस्कार को परिमार्जित करने वाली ऐसी अन्तःक्रिया है जिसमें हित का सर्जन व अहित का विसर्जन होता है"2।***

यदि शिक्षित व्यक्ति के अंदर ये मूलभूत गुण हो तो, अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग कर, वो एक समीचीन व्यक्तित्व का धनी बनकर समाज में, प्रतिष्ठित हो सकता है। आज के परिवेश में समाज की शिक्षा की दिशाहीनता के कारण समाज में हिंसा, आक्रोश और संवेदनशून्यता दिखाई पड़ती है। नैतिकता की कमी या दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी के कारण, व्यक्ति स्वयं अवगुणों से ग्रसित हो जाता है, क्योंकि उसकी मनःस्थिति पर उसका नियंत्रण नहीं होता। अहंकार का भाव बड़े से बड़े मनुष्य को भी पतन की ओर ले जाता है।

"अपने आप को बड़ा न मानना और न ही अपने से किसी को छोटा मानना"3 शिक्षा का मूल, व्यक्ति को शिक्षा के महत्व को, भलीभांति दिखाता है। आचार्यश्री के मुखरवृंद से, ***"कर्तव्य, नैतिकता, उदारता, सेवा, त्याग एवं समर्पण शिक्षा के संस्कारों का ही परिणाम है"4।***

यह बात आज के परिवेश के, परिपेक्ष्य में बिल्कुल सटीक बैठती है कि शिक्षा का मूल उद्देश्य भी, मनुष्य के भीतर छुपे बैठे पाश्विक प्रवृत्तियों का शोधन कर, मानवीय गुणों को सशक्त बनाना है। तभी वह अच्छे संस्कारों को ग्रहण कर पाएगा। आज व्यक्ति का स्वयं के ऊपर नियंत्रण इतना कमजोर हो गया है कि, वह किसी भी परिस्थिति में घबरा जाता है, अवसादग्रसित हो जाता है या कुंठित **हो** जाता है। अति महत्वाकांक्षा भी कई बार ऐसी प्रवृत्तियों को जन्म देती है, जो सभ्य समाज के नहीं कहे जाते हैं।

समृद्ध मानव संसाधन भी देश की अमूल्य निधि है। संस्कारों की पूंजी ही वह माध्यम है जिनसे व्यक्ति अपने आदर्शों का निर्धारण करता है और यही सांस्कृतिक विरासत पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती है। आचार्यश्री के अनुसार ***"आदर्श सभ्यता एवं संस्कृति शिक्षा का सौंदर्य है"5।***

आचार्यश्री ने इसी बात को, पूरी तरह से समाज को स्वीकारने की बात कही है। वे कहते हैं, ***"शिक्षा जीवन का निर्वाह नहीं, निर्माण है"*** 6। क्योंकि निर्वाह रुप की ओर ले जाता है, निर्माण स्वरुप की ओर। इस बात को गौर करें तो

स्वमेव दृश्टव्य है कि, मात्र ज्ञान अर्जन से शिक्षा का उद्देश्य और सार्थकता पूर्ण नहीं हो सकती है। उसी प्रकार मात्र ध नोपार्जन भी शिक्षा का उद्देश्य नहीं बल्कि, शिक्षा तो व्यक्ति के जीवन का वह हथियार है, जो शिक्षा संस्कार पाकर जीवन का निर्माण करना है। स्वयं की अंतर्निहित शक्तियों को पहचान कर स्वशक्तियों को उच्चतम बिन्दु तक विकसित करना ही, शिक्षा का परम लक्ष्य होना चाहिए और यही शिक्षा की सार्थकता भी है ।

शिक्षा मात्र अक्षरज्ञान या ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि श्रमशील भी होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सहायता मिल सके। व्यक्ति ना केवल इस ज्ञान के माध्यम से जीविकोपार्जन कर सके, बल्कि उचित दिशा में प्रयास करके करना है।

आचार्यश्री विद्यासागर के अनुसार, ***"शील बिना न ज्ञान है, ज्ञान बिना न शील, ज्ञान निहित है शील में, निहित ज्ञान में शील"*** 7। ज्ञान वो होना चाहिए जो चरित्र निर्माण की ओर अग्रसर हो। क्योंकि ज्ञान के बिना चरित्र अधूरा है। चरित्र से आत्मा की पहचान होती है और जीवन की पूंजी भी है। चरित्र निर्माण की शिक्षा में नैतिक शिक्षा समाहित है।

चरित्र निर्माण या व्यक्तित्व निर्माण को जैन दर्शन की पंक्तियों में व्याख्या करें तो भावात्मक (सम्यग्दर्शन), ज्ञानात्मक (सम्यग्ज्ञान) और क्रियात्मक(सम्यग्चरित्र) तीनों पक्षों के विकास से व्यक्ति के व्यक्तित्व में संतुलन एवं समन्वय को स्पष्ट देखा जा सकता है। शिक्षा के पाठयक्रम में इसे ऐसे समझा जा सकता है:–

01. ज्ञानात्मक पक्ष– भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक अध यन, अर्थशास्त्र, वाणिज्य और अध्यात्म।

02. भावात्मक पक्ष– साहित्य, दर्शन, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, संगीत, ललितकला संस्कृति।

03. क्रियात्मक पक्ष– सहगामी क्रियायें, शिल्पकला, शारीरिक शिक्षा, चरित्र निर्माण।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान परिवेश में शिक्षा में नैतिकता का समावेश अत्यंत महत्वपूर्ण बिन्दु है एवं व्यक्तित्व विकास में सहायक भी। आज हमें पुनः समग्र चिन्तन करने की आवश्यकता है कि, हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमें किस स्तर का मानव संसाधन तैयार कर रही है, प्रत्यक्ष दोष में, बढ़ती बेरोजगारी मानसिक गुलामी एवं अकर्मण्यता स्पष्ट परिलक्षित है, तो परोक्ष दोषों में संस्कारों की कमी, व्यक्तिवादिता, विलासिता, स्वार्थपरता, लोलुपता, जैसे गुणों से युक्त दिखाई पड़ते हैं।

भारतीय दर्शन और संस्कृति आज भी पूरे विश्व के समक्ष अपने गरिमामयी इतिहास के लिए जाने जाते हैं। भारतीय गुरुकुल व्यवस्था, छात्रों को कार्य, संघर्षषील एवं संस्कारवान बनाते हुए जीवन निर्माण की शिक्षा देती है, जो उन्हें जीवनपर्यंत मार्गदर्शक स्तंभ के रुप में कार्य करती थी। किन्तु आज अंग्रेजों के सुनियोजित षडयंत्र ने देश की गौरवमयी परम्परा को ध्वस्त करते हुए, हमारे समृद्ध मानव संसाधन के क्षरण की दिशा में ले जाने को उद्यत है। आज हमारा देश अपनी मातृभाषा को अपनाने में संकोच कर रहा है, पराकाष्ठा यह है कि, हम भारत को अंग्रेजी में भारत नहीं "इण्डिया" कहते हैं, जिस पर ध्यान देने का वक्त आ गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

01. ऐलक, नम्र सागर(1998), शिक्षा एक संस्कार– आचार्यश्री के प्रयासों का संग्रह, सिंघई ऑफसेट, मण्डला(म.प्र.) पृ.सं.–4

02. आचार्य विद्यासागर, सामूहिक चर्चा, जबलपुर 16 फरवरी, 2001

03. आचार्य विद्यासागर(1998) मूकपाटी महाकाव्य। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली। पृ.सं.–97

04. ऐलक, नम्र सागर(1998), शिक्षा एक संस्कार– आचार्यश्री के प्रयासों का संग्रह, सिंघई ऑफसेट, मण्डला(म.प्र.) पृ.सं.–4

05. ऐलक, नम्र सागर(1998), शिक्षा एक संस्कार– आचार्यश्री के प्रयासों का संग्रह, सिंघई ऑफसेट, मण्डला(म.प्र.) पृ.सं.–4

06. आचार्य विद्यासागर, तेरा सो एक, ज्ञानोदय प्रकाशन, जबलपुर, म.प्र. पृ.सं–55

07. आचार्य विद्यासागर(1996), समग्र (स्वयं दो) समग्रह प्रकाशन, सागर म.प्र.। पृ.सं.–372

08. आचार्य विद्यासागर के शैक्षिक विचार(2016) नवजीवन पब्लिकेशन, निवाई (टोंक), राजस्थान। ISBN-978-81-8286-162-0. पृ.सं.–159

09. आचार्य विद्यासागर– शिक्षा के उद्देश्य, ऑडियो सीडी, जबलपुर। दिनांकः 16 फरवरी, 2002.

10. आचार्य विद्यासागर के शैक्षिक विचार(2016) नवजीवन पब्लिकेशन, निवाई (टोंक), राजस्थान। ISBN-978-81-8286-162-0. पृ.सं.–142

स्त्री विमर्श
परंपरा और नवीन आयाम
''प्राचीन साहित्य और समाज के परिपेक्ष्य''

आशारानी पटनायक
शोधार्थी (पी.एच.डी.) हिन्दी
बस्तर विश्वविद्यालय,
जगदलपुर छ.ग.
प्रो.डॉ.आर.पी.टंडन (शोध निर्देशक)
मो.–9406238107

प्राणी जगत में नारी शब्द नर के सामान्तर पुरूष और नारी के संयोग से ही इस जगत का निर्माण हुआ है। नारी यदि शक्ति है तो पुरूष शक्तिमान। नारी और नारी के बिना पुरूष का कोई अस्तित्व नहीं है। वह माता, पत्नी, पुत्री, बहन, सभी रूपों में पुरूषों के लिये सम्मानीय है अतः वह महिला कहलाती है। नारी के विषय में डॉ. राधाकृष्ण ने कहा है कि नारी उस प्रेम का प्रतीक है, जो हमें खींच कर, उच्चतम स्थिति की ओर ले जाती है।

हमें स्त्री को केवल आनंद का साधन नहीं समझना चाहिये। यह सच है कि वह नारी है वह सहायता करने वाली भी है। परन्तु सबसे पहले वह मानव प्राणी है। उसके साथ पवित्रता तथा रहस्य जुड़ा हुआ है उसे नौकरानी या घर की देखभाल करने वाली चल सम्पति समझकर व्यवहार नहीं करना चाहिये। वह पुरूष को वास्तविकता तक पहुँचाने के लिये सेतु का काम करती है।

नारी के इन विभिन्न रूपों के आधार पर उसके स्वरूप की परिकल्पना की जा सकती है। जिसमें लज्जा रागात्मक चेतना, कमनीयता है पूर्ण नारी कहलाने की अधिकारिणी है। नारी का यह स्वरूप कविवर जयशंकर प्रसाद ने 19122– स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार–डॉ.वैशाली पांडे जिला ग्रंथालय इन पंक्तियों में पूर्णतः साकार किया है।

1. ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत पग तल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।'' 1

2. परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है, अतः प्रकृति के इस नियम के अनुरूप समाज में नारी की स्थिति में भी समय– 2 पर काफी परिवर्तन आये है। स्त्री जन्म से स्त्री का भाव लेकर नहीं आती बल्कि उसके आसपास का परिवेश उसे इस मानसिकता में परिवर्तित करता है। 2

3. 20वीं शताब्दी की नारी ने युग से चलने वाली उत्पीड़न प्रक्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में एक और तो नारी मुक्ति आन्दोलन चलाया। दूसरी ओर तो नारी मुक्ति आन्दोलन चलाया। दूसरी ओर तो नारी खुले और नंगे प्रदर्शन के कुचक्र में भी फंसती चली गई। इस तरह उसे आजादी का मिथ्या बोध ा भले ही मिल जाय लेकिन वह पुरूष प्रधान व्यवस्था के लोलुप तंत्र का एक हिस्सा बनाकर रह जाती है। यह नारी न पहेली न जादू की छड़ी वरन नारी है जो किसी भी स्थिति और किसी भी परिस्थति में पुरूष से अपने को हीनतर प्राणी मानने के लिए तैयार नहीं। उसने नारीत्व का नया रूप गढ़ा है।

नैतिकता को झकझोरा है। मान्यताओं को चुनौती दी हैं पारस्परिक दृष्टि को आघात पहुँचाया है। 3

4. डॉ. प्रतिभा के अनुसार नर और नारी की मानसिक भिन्नता का अनेक प्रकार से विश्लेषण करने से पता चलता है कि नारी की मानसिकता उसकी शारीरिक संरचना विशेष के कारण ही नर से भिन्न नहीं है। सामाजिक परिवेश, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत परिस्थितियॉ संस्कार और मूल्य सब मिलाकर नारी मानसिकता निर्मित करते है। जन्म से लेकर शैशवास्था तक नर और नारी की मानसिकता में कोई अंतर नहीं होता। 4

5. मूलतः अमेरिका में निर्मित ''स्त्रीवाद'' का प्रचार प्रसार सन् 1960 के पश्चात बड़ी तेजी से हुआ। सन् 1976 के ''अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष'' के उपरान्त स्त्री, मुक्ति आन्दोलन तथा स्त्रीवाद विचार धारा को नयी दिशाएं केन्द्रित थे। लेकिन मातृसत्तात्मक कुटुंब व्यवस्था जब पितृसत्ताक कुटुंब व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी तब जब उसे धार्मिक सामाजिक राजनैतिक आर्थिक कार्यो में सहभागी किया जाता था उसके जीवन का उज्जवल पक्ष मात्र अतीत बनकर रह गया।

''औरत की इस बदलती स्थिति के संदर्भ में एंगेल्स ने कहा है मातृसत्तात्मक से पितृसत्तामक का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी हार थी। सत्य तो यह है कि स्त्री के लिए ऐसा स्वर्ण युग वास्तव में मिथक के अलावा और कुछ नहीं। यह कहना कि स्त्री अन्य है इस बात को सिद्ध करता है कि स्त्री और पुरूष में कोई पारस्परिक संबंध नहीं था। वह चाहे धरती थी चाहे माता, देवी किन्तु पुरूष की संगी मित्र कभी नहीं थी।

पाश्चात्य विद्वान पाइथागोरस के अनुसार जो अच्छे सिद्धांत है वो पुरूष की व्यवस्था एवं उजाले को जन्म देते है, तथा बुरे सिद्धांत अव्यवस्था, अंधेरा वो औरत को जन्म देते है। मनुसंहिता के अनुसार स्त्री एक निकृष्ट वस्तु है जिसे बंधनों में रखा जाना चाहिए। रोमन कानून औरत को संरक्षण में रखने के लिए कहता है, ताकि उसकी मूढ़ता पर लगाम लगाई जा सके। फैकन का कानून औरत को शैतान कहता है जबकि कुरान औरत के प्रति भयानक उपेक्षा रखता है।

सदियों से रहते आये इन बंधनों एवं अत्याचारों का अहसास स्त्री को धीरे होने लगा। आधुनिक कालखण्ड तक आते स्त्री को अपने स्व के अस्तित्व की पहचान होने लगी।

अपनी अस्मिता की पहचान के कारण उसके विचारों में परिवर्तन होने लगा।

''सुदेश बत्रा के अनुसार एक लम्बी, पुरानी स्थापित व्यवस्था को तोड़कर जनसंघर्ष से जुड़ना और कदम पर यथार्थ मुठभेड़ करना अस्मिता की पहचान का तकाजा।''

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात जब स्त्री को पुनः घरों में कैद किया जाने लगा तब अपने सामर्थ्य को पहचान चुकी स्त्री ने विरोध किया। विभिन्न आन्दोलन से संघर्ष किया। उसमें मानसिक तथा वैचारिक परिवर्तन हुआ। उसकी इसी विचारध ाारा के ''स्त्रीवाद'' कहा गया।

तुलनात्मक दृष्टिकोण से भारतीय स्त्री पाश्चात्य स्त्री से अधिक हीन दृष्टिकोण की शिकार है। ''मनु ने स्त्री को किसी भी प्रकार से स्वातंत्र्य देने को मना किया है। मनुसंहिता में कहा है।

6 पिता रक्षति को मार्य, भर्ता रक्षति यौवने,
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।'' 6

स्त्री को कभी देवी बनाकर कभी मॉ बनाकर बंधनों में जकड़ा जाता है। यथार्थ यह है कि आज भी उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं है। घर और बाहर इन दो स्तरों पर वह उपेक्षा की शिकार हो रही है। भारतीय स्त्री इन स्थितियों से जाते हुये स्वयं के विषय में सोचने लगी और इसी पार्श्वभूमि पर यहॉ स्त्रीवादी आन्दोलन का आरंभ हुआ है।

6. प्रसिद्ध फ्रेंच लेखिका ''सिमोन दबोआ'' ने नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुये द सेकेंड सेक्स नामक पुस्तक लिखी। सबसे पहले तो उन्हें स्त्री का स्त्री होना स्वीकार नहीं है। समाज का परिवेश नारी को नारी बनाये रखने के लिये जिम्मेदार है। 6

7. समोन ने कहा है ''औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिये अनुकूल बनाया जाता है। सिमोन ने कहा है आज की दुनिया में औरत का सही और सही रूप वस्तुतः क्या है। वस्तुतः उसका कौन सा दर्जा होना चाहिए। 1941 में उठाये गये सिमोन के सवालों का जवाब सभी स्त्री मुक्ति विचारधारा को स्वीकार करने वाले ढूंढ़ रहे है। 7

8. नारी को मानव के रूप में प्रस्तुत करना स्त्रीवाद का प्रमुख ध्येय है। सिमोन के अनुसार ''जब हम मानव शब्द का उच्चारण करते है तो उसमें पुरूष और स्त्री दोनों समाहित होते है। 8''

पाश्चात्य विद्वान एलिस जार्डिन के अनुसार नारीवाद स्त्रियों की दृष्टि से स्त्रियों के लिये किया गया आन्दोलन है। जिस दिन स्त्री के गुणों को स्वीकृत किया जायेगा, उसी दिन उसे एक व्यक्ति का स्थान प्राप्त होगा। बांग्ला लेखिका तस्लीमा नसरीन के अनुसार

9. जिस दिन यह समाज स्त्री शरीर का नही शरीर के अंग प्रत्यंग नहीं, स्त्री की मेघा और श्रम का मूल्य सीख जाएगा, सिर्फ उस दिन स्त्री मनुष्य के रूप में स्वीकृत होगी। महिलाओं के सामाजिक जीवन के प्रत्येक जागरण और क्रियाकलापों की सहायता करनी चाहिए ताकि वे अपने कूपमंडूक आत्मकेन्द्रित घरेलू और पारिवारिक मानसिकता से बाहर आ सके। 9

कानून रूढ़ी संस्था और जनमत सभी स्तरों पर नारी को मानवता का मूल्य युक्त अधिकार दिलाने के लिये सूझबूझ के साथ लड़ी जाने वाली राजनीति लड़ाई को ''स्त्रीवाद'' कहा जा सकता है। ''स्त्रीवाद'' के संदर्भ में समाज में गलत दृष्टिकोण दिखाई देते है। सामान्यतः यही सोचा जाता है कि स्त्रीवाद आन्दोलन नारी को पुरूष से अलग करने के लिये या नारी को पुरूषों पर वर्चस्व स्थापित करने के लिये छेड़ा गया आन्दोलन है। डॉ भारती जाधव के विचार इस धारणा का खण्डन करते है। उनके अनुसार स्त्री मुक्ति आन्दोलन पुरूष के विरोध में आन्दोलन न होकर वह जुल्म जबर्दस्ती की प्रकृति के विरोध की लड़ाई है। सहयोग व सह जीवन का आन्दोलन करने वाला एक आन्दोलन है। स्त्रीवाद से तात्पर्य स्त्री ने औरों पर अधिकार, हक प्रस्थापित्य करना न होकर औरतों के सवालों के संबंधों में समाज में एक विस्तृत नजरिया निर्माण करके उसक अनुसार समाज का पुनः निर्माण करना है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्रीवाद में स्त्री की ओर मानव के रूप में देखकर उसके मानवीय व्यवहार पर सोचा जाता है। साथ ही उसकी स्वतंत्रता को महत्व दिया जाता है। स्वयं के जीवन के निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त होना, शिक्षा प्राप्त करने का अवसर, समाज में, पुरूषों के समान अधिकार उसका (पुरूष का) जो विकास हुआ है वैसे ही विकास अवसर इस समाज व्यवस्था से नारी को प्राप्त हो या इच्छा स्त्रीवादी विचार धारा अपनाने वालों की है।

10. स्त्री के आर्थिक स्वतंत्रता के संदर्भ में प्रभा खेतान ने कहा है कि ''मुक्ति की पहली शर्त है कि स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो। यदि इस शर्त को कोई औरत पूरा कर ले तो वह अपनी जिन्दगी आधी से अधिक लड़ाई जीत लेती है। 10

मार्क्सवादी स्त्रीवाद ने स्त्री शोषण के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करते हुये इस बात को स्पष्ट किया कि शोषित वर्ग की स्त्री को मुक्त करने का ध्येय सामने रखकर ही स्त्री मुक्ति का ध्येय पूर्ण हो सकता है। जैसे–2 सर्वहारा समाज का विस्तार होगा, नारी का रास्ता प्रशस्त कर लेगा तथा सामाजिक क्रांति के जरिए जब पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था समाप्त होगी तो उसके साथ ही पुरूष श्रेष्ठता की दीर्घ कालीन परम्परा की जड़े भी

पूरी तरह समाप्त हो जायेगी।

मार्क्सवादी स्त्रीवाद ने स्त्रीशोषण के आर्थिक पहलू पर प्रकार डाला। आज स्त्री बड़ी मात्रा में आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बन रही है। लेकिन उसकी शोषण की प्रक्रिया में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। लैंगिक अत्याचार की शिकार वह निरन्तर हो रही है। यह नष्ट करने के लिये पुरूष प्रधान व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक है। मार्क्सवादी स्त्रीवाद पुरूष विरोधी नहीं पुरूष के सत्ता एवं वर्चस्व का विरोधी है। लिंग एवं वर्ग को समान रखकर अगर स्त्री मुक्ति के लिये किया जाय तो स्त्री मुक्ति के लिये पुरूषों को भी आगे आना होगा तभी इस ज्वलन्त समस्या से मुक्ति संभव है।

11. दैनिक भास्कर 8–3–2015 पृष्ठ–3 ''दूसरों के पीछे चलने वाली महिलावादी तक पहुॅचती है जहॉ तक दूसरी महिलायें जाती है। लेकिन जो महिला अकेले निकली है वह उन जगहों पर जाती है। जहॉ कोई नहीं जाता।''

''जो महिला घर चलाने में आने वाली समस्याओं को समझती है वह देश को बेहतरीन तरीके से आगे लेकर जाने के हुनर और उसमें आने वाली परेशानियों को बखूबी समझती है।'' 11

दैनिक भास्कर 8–3–15 पृष्ठ 4 स्त्री मुक्ति का विचार ही गलत सुमित्रा महाजन (लोकसभा अध्यक्ष) स्त्री मुक्ति का विचार ही गलत है। मुक्ति किस चीज की ये शब्द ही असंगत है। उसे किस बात से मुक्ति चाहिए, परिवार से अपने आप से पुरूष से या समाज से स्त्री के लिये सबसे पहले अहम है उस कुविचार से मुक्ति जो उसे स्त्री मानता है, मनुष्य नहीं। उसके समाज और जीवन में सहभाग के लिये आवश्यक है उसे समकक्ष मानना, हमसफर मानना। हम अधिकार देंगे ऐसी बात ही गलत है कोई अधिकार क्या देगा। वह तो स्त्री का जन्मजात हक हैं। इसी पुरूष प्रधान मानिसकता को बदलना होगा।

अतः हम कह सकते है कि महिलाओं ने अपने कर्तव्य, कर्मठता और सृजनशीलता के माध्यम से राष्ट्र निर्माण और विकास में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। आज भी नारी पुरूषों के समान ही सुशिक्षित है, सक्षम, और सफल हैं। चाहे वह क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, खेल, कला, साहित्य, इतिहास, भूगोल, खगोल, चिकित्सा, सेवा मिडिया या पत्रकारिता कोई भी हो। नारी की उपस्थिति, योगदान, योग्यता, उपलब्धियॉ, मार्मिकता और सृजनशीलता स्वयं एक प्रत्यक्ष परिचय देती है। परिवार और समाज को संभालते हुये, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी ने हमेशा ही विजय पताका लहराते हुये राष्ट्र निर्माण और विकास में अपना विशेष और अभूतपूर्व योगदान दिया है। यही कारण है कि वह सृजना, अन्नपूर्णा, देवी, युगदृष्टा और युग सृष्टा होने के साथ ही ''स्वयं सिद्धा'' भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 जयशंकर प्रसाद कामायनी लज्जा सर्ग पृष्ठ 84
2 समकालीन हिन्दी उपन्यास की आधुनिकता डॉ.प्रतिभा पाठक
3 स्त्री के उपेक्षित प्रभा खेतान पृष्ठ–52
4 स्त्री उपेक्षित प्रभाखेतान पृष्ठ क्र0–6
5 नारी अस्मिता हिन्दी उपन्यासों में पृष्ठ–।
6 मनुस्मृति 9/अ स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार वैशाली देशपांडे पृष्ठ–14
7 स्त्री उपेक्षित प्रभा खेतान पृष्ठ–23
8 प्रभा खेतान– पृष्ठ 25 स्त्री उपेक्षित
9 औरत के हक में तस्लीमा नसरीन, अनु. मुनमुन सरकार – पृष्ठ–99
10 प्रभा खेतान से साधना अग्रवाल की बातचीत – वागर्थ सित0–2003–पृष्ठ
11 ''अल्बर्ट आइंस्टीन''

काव्य

बूढ़ा घर

आरती सिंह एकता
नागपुर
मो.–9823223380

मकड़ी के जाले भर,
झिंगुरों की किर्राहट,
कालिख पुती दीवार।
करता बंजर बन इंतजार.....
ठूंठ तुलसी का बिरवा,
चूल्हे की बुझी राख,
प्यासा सूखा मटका,
करता बंजर बन इंतजार .....
झूलती चरमट खटिया,
डिबरी तेल का दिया,
टूटी –फूटी छपरिया,
करता बंजर बन इंतजार .....
सबको खुशियां दी,
नववधुओं का स्वागत किया,
रूनझुन, किलकारियां,
सुनने के लिए,
करता बंजर बन इंतजार .....
सावन आया, भादो आया,
पर सूनी रही दलान,
खत्म हो गई आस उसकी,
जर्जर हो गई मचान,
ऊंची अटार अब उल्लू बैठ,
करता बंजर बन इंतजार।

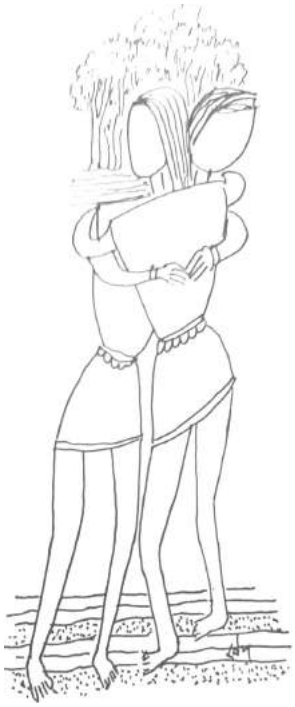

सामाजिक विसंगतियों को उजागर करती घोंसला और घर और अन्य लघुकथाएं

लेखिका

डॉ. शैल चंद्रा
रांवणभाठा
नगरी–493778
जिला–धमतरी छ.ग.
मो.–9424215994

प्रकाशक
यश प्रकाशन दिल्ली
प्रथम संस्करण–2017
मूल्य–295

समीक्षक

खुदेजा ख़ान
धरमपुरा नं.–1
चित्रकोट रोड,
जगदलपुर–494001
मो.–9424281621

लेखिका डॉ शैला चंद्र की 101 लघुकथाएं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांसारिक गतिविधियों, रीति–रिवाजों, असमानताओं, अवसरवादिता पर कुठाराघात करती हमें चेताती हैं कि हम किस हद तक दोहरी मानसिकता के शिकार है और जाने–अनजाने अपने दैनिक जीवन में बिना कुछ सोचे–समझे उसका अनुपालन करते रहते हैं बिना किसी आत्मग्लानि के।

आस–पास के परिवेश और वातावरण का शायद ही कोई विषय हो जो उनकी कलम से अछूता रह गया हो।

आम आदमी भगवान से डरता है इसलिए 'भयमुक्त होकर भिखारी भीख मांगता है। भगवान के नाम पर और भी कितने तरह के पाखण्ड और स्वार्थ सिद्ध किये जाते हैं ये जग जाहिर है।

'कुसूर' सिर्फ इतना है कि हमारे धर्म अलग–अलग हैं क्योंकि दंगाइयों का धर्म नहीं होता। दंगे का आधार उन्माद और कृत्य केवल विनाश है, इंसानियत से कोई वास्ता नहीं।

जनगणना अधिकारी का 'जात' पूछना ताकि उसके हाथ की चाय पी सके, जातिवाद की संकीर्णता को उजागर करती है। आदमी अपनी आदमीयत से इतना नीचे गिर गया है कि कुत्ते को कुत्तत्व पर 'गर्व' होने लगा है।

'कौमी एकता' पर भाषणबाजी ठीक है लेकिन जब खुद की बेटी अन्तरजातीय विवाह करती है तो दंगा छिड़ जाता है। चोर–पुलिस की मिली भगत 'सबूत'। सम्पन्न माता–पिता की इकलौती बेटी मगर एकाकीपन की शिकार 'निष्कर्ष'। अफीम की तरह समाज में फैला हुआ है 'धर्म का नशा'। खेतिहर जमीन का दिनों दिन बिक कर मकान और काम्पलेक्स बनना, कटते हुए पेड़ और जंगल 'बंजर' होती धरती पर सांस कैसे लेंगे ?

सत्ता का 'दारोमदार' निचले तबके पर है तभी तो उन्हें मुफ्त में कंबल, साड़ी, साइकिल, दारू, नगदी सभी बांटी जाती है। यानी वोट प्राप्त करने के सारे हथकण्डे अपनाये जाते हैं।

'घोंसला और घर' वो घर, घर नहीं जहां प्रेम और सौहार्द न हो। पशु–पक्षी भी प्रेम की भाषा समझते हैं जहां प्रेम नहीं वहां परिन्दे भी अपना घोंसला नहीं बनाते। बड़ी अट्टालिका छोड़ अपने नैसर्गिक आवास में चले जाते हैं।

प्रतिस्पर्धा की अंधी दौड़ में लिप्त मां अपने बच्चे को इसलिए 'थप्पड़' मारती है कि वो प्रथम आया, कक्षा में टॉप क्यों नहीं किया। आजकल लोग इतने अव्यवहारिक होते जा रहे हैं कि शोक व्यक्त करने के लिए पड़ोसी के पास जाने का भी समय नहीं निकालते भले ही शॉपिंग मॉल चले जायेंगे, दूसरों के दुख में शामिल होना बस 'औपचारिकता' ही रह गई है।

'दलबदलू', 'अनुशासन', 'सत्यमेव जयते', आदि राजनीति, शासन–प्रशासन की अव्यवस्था के दिखावे पर खुलासा करती हैं वहीं कुछ लघुकथाएं पारिवारिक, धार्मिक खोखलेपन को व्यक्त करती हैं–जैसे– 'समस्या', 'धर्म', 'अनुकरण', मार्डन' आदि।

साहित्य में फैली जुगाड़ संस्कृति को व्यक्त करती 'प्रोग्रेसिव', 'एकसास'। जहां लड़कियों के पहनने–ओढ़ने पर भी पाबंदी हो वहां बस 'तालिबान ही तालिबान' नजर आता है। कार्यालयों में रिश्वतखोरी की 'परम्परा', खबरें भी 'बाजार' का हिस्सा बन गई हैं। खोमचे वालों से पैसा वसूलते 'भाई लोग', एक दलित का दुख 'आक्रोश', 'गांव वालों को भी पानी खरीदकर पीना 'मजबूरी', 'रावण' का ही बोलबाला है राम तो बहुत कम बच गये हैं। नक्सली हमले में उजड़े परिवार का 'सवाल' उनका घर कहां है ?

प्रोत्साहन राशि के लालच में सवर्ण की दलित से शादी 'दोगलापन', ट्रेन में सफाई करने वाले अपाहिज लड़के को पैसे देने के बजाए साधु जो सबका भविष्य बांचता है लोग उसे पैसे देते हैं। 'दृष्टिकोण' मजदूर इसलिए 'मेहनत' करता है कि शराब पी सके सरकार तो फ्री राशन में पैंतीस किलो चावल दे रही है। एक सब्जीवाला चिलचिलाती धूप में सब्जी बेच रहा है और एक सरकारी कर्मचारी ऑफिस से गोल मारकर घर में आराम फरमा रहा है 'ईमानदारी' किसमें है ज्यादा ?

सीधे–सरल शब्दों में कही गइ ये लघुकथाएं मुख्यतः मनुष्य के स्वार्थ, संकीर्ण मानसिकता, रूढ़िवादिता की ओर इंगित करती हैं। कहीं–कहीं अत्यंत सपाट भाषा शैली एकरसता पैदा करती है। अन्तरमन के कुंठित विचारों में बदलाव की पहल करती लघुकथाओं को पाठकों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

बस्तर–प्रकृति व संस्कृति; एक शानदार कृति

लेखक

डॉ. रामकुमार बेहार
370–सुन्दर नगर
रायपुर छ.ग.
मो.–9826656764

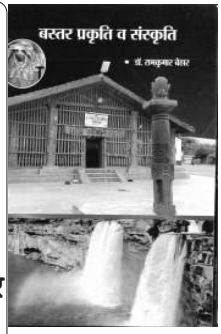

प्रकाशक
छत्तीसगढ़ शोध संस्थान
रायपुर
प्रथम संस्करण–2017
मूल्य–100

समीक्षक

उर्मिला आचार्य
पंचरास्ता चौक
जगदलपुर–494001
मो.–9575665624

दंतेश्वरी देवी के प्रतिनिधि के रूप में मावली व अन्य माताओं के मंदिर गांव–गांव में स्थापित किये गये हैं मावली बड़ी है कि दंतेश्वरी, मावली पहले आई है कि दंतेश्वरी, ये विवाद के विषय रहे हैं।

संदर्भ–बस्तर की मावली देवी पृष्ठ क्र.–29,

बस्तर प्रकृति–संस्कृति से उपरोक्त उद्धरण मेरे द्वारा यहां दिया गया है जिसका प्रकाशन छत्तीसगढ़ शोध संस्थान रायपुर से किया गया है।

डॉ रामकुमार बेहार छत्तीसगढ़ के जाने माने शिक्षाविद्, इतिहासकार, कवि और साहित्यकार के रूप में ख्यातिनाम हैं। आपने बस्तर अरण्यक से लेकर बस्तर –प्रकृति एवं संस्कृति कुल बीस किताबें लिखी हैं जिसमें छत्तीसगढ़ प्रांत के प्रायः सभी क्षेत्रों पर लेखन कार्य किया गया है किन्तु सर्वाधिक रूप से आपने 'बस्तर' के आदिवासी अंचल और आदिवासी संस्कृति यथा खेल, पर्यटन, इतिहास, रीति–रिवाज, देवी–देवता, देवगुड़ी आदि अनेकानेक विषयों पर अपना लेखन कार्य किया है।

'बस्तर–प्रकृति व संस्कृति' यह शीर्षक ही सिद्व करता है कि डॉ. बेहार ने बस्तर के प्राकृतिक सौन्दर्य और आदिम संस्कृति को लेकर यह किताब लिखी है।

बेहार जी का बस्तर के प्रति सदैव ही विशेष अनुराग रहा है उनकी पूर्ववर्ती रचनाएं इसका प्रमाण हैं। बस्तर अरण्यक 1985 से लेकर सम्प्रति 'बस्तर–प्रकृति व संस्कृति' 2017 तक यह साहित्य सृजन की लम्बी यात्रा है जिसमें आपका अनुभूत जगत और शोधपरक कार्य की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

इस पुस्तक का मुखपृष्ठ दंतेवाड़ा का मंदिर और चितरकोट जलप्रपात का परिदृश्य है साथ ही ''गरूड़खंभ'' की तरह स्वयं बेहार जी बस्तर का अवलोकन आस्था, विश्वास और इतिहास की यात्रा करते हुए से लगते हैं।

इस पुस्तक को आपने समर्पित किया है ''बस्तर में नक्सली हिंसा में शहीद हुए वीर जवानों को'। जो आपके आतंक के प्रति आक्रोश और बस्तर में अमन की कामना में उठाई लेखनी की ताकत को उजागर करता है।

''बस्तर का नामकरण'' इस संदर्भ में अनेक बातें और किस्से प्रचलित हैं जिनका उल्लेख लेखक ने भी अपने स्तर पर किया है और अनेक मतों के लिए कुछ तथ्य भी प्रस्तुत किये हैं। आजादी के समय बस्तर की स्थिति, भारत राज्य में विलय, अबूझमाड़ की भौगोलिक स्थिति जिसमें अबूझमाड़ के लोग अपने को मेटा कोयतूर कहना पसंद करते हैं पर डॉ ग्रिक्सन ने उन्हें हिल माड़िया का नाम दिया है। ऐसे 'अबूझ' माड़ के लोगों का रहन–सहन आजीविका बारे में उल्लेख बेहार जी ने भी किया है।

बस्तर के आदिवासी और पूरे भारत के आदिवासयों के प्रति देश के राजनेता और महानुभावों के विचार 'बस्तर के आदिवासी'' नामक शीर्षक में उल्लेख हुआ है।

बस्तर का गौरनृत्य, बस्तर की मावली देवी, बस्तर का भतरानाट, चितरकोट जलप्रपात, मुर्गालड़ाई इन शीर्षकों में लेखक ने बस्तर की पारम्परिक और देव आस्था की ऐतिहासिक जानकारियां दी हैं।

मुरिया–गोटुल (घोटुल) इस शीर्षक के लेख में डॉ बेहार जी ने बस्तर के विश्वप्रसिद्ध घोटुल का परिचय विस्तार से दिया है। और घोटुल को लेकर बाहर की दुनिया में जो भ्रांतियां हैं उसे भी दूर करते हुए घोटुल को ''युवागृह'' का नाम दिया और उसे सामाजिक और धार्मिक जीवन का केन्द्र बताया है–वेरियर एल्विन–द मुरिया एण्ड देयर घोटुल पृष्ठ 7 का उल्लेख करते हुए।

साथ ही लेखक ने आज के संदर्भ में घोटुल की उपयोगिता और सार्थकता पर भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने लिखा है आज नारायणपुर और कोण्डागांव क्षेत्र के कुछ भागों में ही घोटुल प्रचलित है जहां युवक–युवतियों संबंधों को अतिरंजित करके नहीं देखा जा सकता है।

'क्रांतिवीर गुण्डाधुर'' शीर्षक में बस्तर के भूमकाल आंदोलन का जिक्र है–अंग्रेजी शासन, बस्तर राजा का दीवान उनके द्वारा किया जाने वाला उत्पीड़न भूमकाल आंदोलन की पृष्ठभूमि थी जिसमें गुण्डाधुर (जिसकी विश्वसनीयता पर भी संदेह किया जाता है) की वीरता, नेतृत्व क्षमता का लेखक ने विस्तार से उल्लेख किया है।

''शहीद गेंदसिंह'' इस आलेख को लेखक ने अनेकानेक तथ्यों के साथ प्रमाणिक रूप से प्रस्तुत किया है।

बस्तर का गोंचापर्व और माड़िया के मृतक स्तंभ की भी

रोचक जानकारी भी रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है।

अपने आलेखों के प्रमाण हेतु लेखक ने कई स्थान पर लोहण्डीगुड़ा तरंगिणि का उल्लेख किया है एवं स्वनामधन्य बल्देव मिश्र जी, डॉ ग्रिक्सन, डॉ के.के. झा, नर्मदाप्रसाद श्रीवास्तव, बसंत अवस्थी, महाराजा प्रवीर चंद्र, ब्रम्हदेव शर्मा और नरेन्द्र महापात्र आदि का संदर्भ ग्रंथ और बातचीत को भी शामिल किया है। इसके अलावा अपने बस्तर प्रवास के दौरान लेखक के साथ बस्तर के वरिष्ठ नागरिकों के साथ की गई बातचीत तथा अनेकानेक पुरानी बातें इस पुस्तक में प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत की गई हैं।

मेरा यहां निवेदन है कि ''बस्तर'' को लेकर पूर्व में भी विद्वानों ने कई आलेख और किताबें लिखी हैं जो अपने आप में महत्वपूर्ण हैं उस जरूरी कड़ी में बेहार जी का लेखन कार्य भी तथ्यपरक और महत्वपूर्ण तो है किन्तु यह बस्तर के संबंध ा में एक परिचयात्मक विवरण है, जो बाहरी दुनिया के नये लोग बस्तर को जानना समझना चाहते हैं उन्हें बेहार जी की इस पुस्तक को जरूर पढ़ना चाहिए।

आज जब आदमी स्वकेन्द्रित होने लगा है तब अपनी मिट्टी के बारे में लिखना अपने आपमें महत्वपूर्ण है।

किताब की भाषा सहज बोधगम्य है। भाषा की बोझिलता कहीं नहीं है।

लेखक को हार्दिक बधाई।

इस पुस्तक में संकलित डॉ बेहार की कविताओं के प्रति फिर कभी। हां, वे भी बस्तर का परिचय देती हैं...एक गद्य काव्य की तरह।

बेहार जी आपको कोटिशः प्रणाम! आपकी लेखनी अनवरत चलती रहे। इस आशा के साथ।

अंधी पीसे कुत्ते खाएं : उत्तम व्यंग्किाएं

लेखक

अविनाश ब्यौहार
86, रॉयल स्टेट कॉलोनी, माढ़ोताल, कटंगी रोड, जबलपुर
पिन–482002
मो.–9826795372

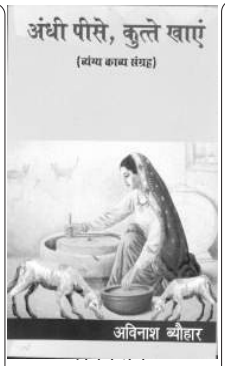

प्रज्ञा प्रकाशन
रायबरेली–जबलपुर
प्रथम संस्करण–2017
मूल्य–100

समीक्षक

सनत कुमार जैन
दुर्गा चौक
जगदलपुर–494001
मो.–9425507942

व्यंग्य संग्रह ''अंधी पीसे कुत्ते खाएं'' अपने शीर्षक को सार्थक करते हुए पाठक के बीच आता है। कहावत के माध्यम से व्यंग्य कसते हुए रचनाकार ने देश की स्थिति का वर्णन किया है। अपनी विभिन्न व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से सरकार के दो हिस्सों स्थाई सरकार यानी सरकारी कर्मचारी और पंचवर्षीय सरकार यानी राजनैतिक सत्ता पर कटाक्ष किया है। ज्यादातर हम सभी अपने जीवन में इन परिस्थितियों से गुजर चुके हैं। और रचनाकार ने उन घटनाओं को अपने बेहतरीन शब्दों में बांधा है। हर व्यंग्यिका अपने आप में एक बेहतरीन अभिव्यक्ति है।

महंगी फीस–अपनी तपती/देह लेकर/रोगी डॉक्टर/के घर गया...!/लेकिन उसकी/फीस सुनकर/उसका बुखार/उतर गया।

जूस–तमाम/गंदगियों का/जूस...!/है/यह/घूस....!!

बिजली के दाम–अभी/लालटेन के दिन/लदे नहीं/फिर आयेंगे...!/यदि/बिजली के दाम/इसी तरह/बढ़ते जायेंगे...!!

मलाई–आजकल/दूध में/पड़ती नहीं/है मलाई....!/कारण,/सुरसा सी/महंगाई.....!!

महंगाई–उन्होंने/रिश्वत से/मिली रकम/मिल बांटकर खाई....!/और ठठा कर/हंसते हुए बोले/ बढ़ रही है महंगाई....!!

देखा न आपने हमारे दैनिक जीवन की कई प्रकार की समस्याओं को व्यंग्य का रूप देकर कटाक्ष प्रस्तुत किया है। समाज का हर पक्ष उन्होंने धान से देखा और अपने शब्दों की बाजीगरी से उसे हम तक पहुंचा दिया। क्षणिका लिखना और फिर व्यंग्यिका लिखना बड़ा ही मुश्किल काम हेाता है। इसके

लिए व्यक्ति की तीक्ष्ण मेघा और तीक्ष्ण दृष्टि दोनों की बराबरी से आवश्यकता होती है। क्योंकि अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से अपने आसपास की विसंगति को देख लेना भी बड़ी बात होती है। वरना बहुत से लोग तो जिन्दगी में ये सब ''ऐसा ही होता है।'' कहकर चुपचाप जी लेते हैं। विसंगति को देखना और फिर उसे शब्दों में बांधना वो भी हास्य व्यंग्य का पुट देकर, बहुत कठिन काम है। रचनाकार ने अपना ये दोनों धर्म शान और इत्मीनान से निभाया है।

हिन्दी मुहावरों का प्रयोग उन्होंने इस कारीगरी से किया है कि क्षणिकाएं पढ़ कर मन गदगद हो जाता है। आप भी देखें।–

रिश्वत–ईमानदारी/होलिका सी/धूं–धूं कर जली...!/रिश्वत/दूधों नहाई/पूतों फली...!!

चांदी कटना–रिश्वत मैया/की कृपा से/उनकी कट रही/चांदी है....!/हमारे घर/ में तो/अभावों की/आंधी है...!!

महंगी सब्जी–सब्जी का/महंगा भाव/सुनकर/मेरे चेहरे से/उड़ने लगी हवाई....!/जी हां/अब हम/सब्जी ऐसे खायेंगे/जैसे कि/हो दवाई.....!!

देश प्रेम–हम देश प्रेम/की भावना में बहे...!/और राजनैतिक/अस्थिरता पर/दो चार शब्द कहे....!!/इस पर नेता जी/खाकर तैश....!/बोले–/जिसकी लाठी/उसकी भैंस....!!

स्वभाव–आजकल/लोगों का/स्वभाव हमें/बहुत खलता है...!/क्योंकि,/सांप को कितना/भी दूध पिलाओ/विष ही/उगलता है....!!

देखा न आपने। दूधों नहाओ पूतों फलो, चांदी कटना, चेहरे से हवाई उड़ना, जिसकी लाठी उसकी भैंस और सांप को कितना भी दूध पिलाओ विष ही उगलता है; मुहावरों को कैसे रचनाकार ने अपनी क्षणिकाओं में डाल दिया। लोक भाषा और लोकबोली में मुहावरों की एक शानदार दुनिया होती है। वे मुहावरों का आनंद दिल से लेते हैं। मुहावरों के प्रयोग से क्षणिका गूढ़ और मर्मदर्शी हो जाती है। क्योंकि मुहावरे अपने आप में एक बड़ी कहानी का सार होते हैं। जिन्हें क्षणिकाओं से जोड़ते ही आपकी क्षणिकाएं मन, मन भर की वजनदार हो जाती हैं। आपके द्वारा इंगित बात सहजता से व्यक्ति के मन पर चोट करती हैं। पाठक का यूं आसानी से आपकी रचनाओं में डूबना, आपके लेखन की सफलता है।

जलील–गांठ कतरने/लग गये/मुंशी और वकील....!/पेशी पर/पेशी मिले/मुवक्किल हुआ जलील....!!

जेब–मुझे/शर्म आ/रही है/बताने में....!/कि मेरी जेब/कट गई/थाने में....!!

देखिए रचनाकार ने हर पेशे को अपनी कसौटी में रगड़ा है। पुलिस और वकील के अलावा नेता, बाबू, बिजली विभाग, नल वाले, सब्जी वाले, शिक्षक आदि कोई भी नहीं बच पाया है उनकी तीक्ष्ण नजरों से।

वर्तमान दौर में व्यंग्किाओं का संकलन प्रकाशित करवाना अदभ्य साहस का काम है। कहानियों का संग्रह ही मार्केट में बिकाऊ है। वरना कविताओं के संग्रह विवाह के कार्यक्रम में नारीयल की तरह बांटने के ही काम आते हैं। आपका व्यंग्य काव्य संग्रह इसलिए अनमोल और काम का है क्योंकि एजेण्डाबद्ध कविताओं के दौर में पाठक और श्रोता के जीवन से जुड़ी वस्तु आपकी यही व्यंग्य रचनाएं दे पा रही हैं। इनमें न तो बनावटीपन है न ही तिकड़मबाजी और न ही दबा छिपा ''वाद'' का एजेण्डा। नदी के निर्मल जल की तरह कलकल करती क्षणिकाएं सीधे पाठक के अंतर्मन में प्रवेश कर जाती हैं।

यूं तो संग्रह की समस्त रचनाएं नंबर वन की श्रेणी के लिए युद्धरत हैं परन्तु जो मुझे विशेषरूप से अच्छी लगी हैं मैंने उन्हें चुन चुन कर इस समीक्षा आलेख में लिया है।

पर एक क्षणिका रवनाकार की ओर से प्रस्तुत करना चाहूंगा। आप भी रसास्वादन कीजिए–

मांग–आजकल/लोगों की/दिमागी हालत/कमजोर पड़/गई है....!/शायद इसीलिए/क्षणिकाओं की/मांग बढ़/गई है....!!

रचनाकार ने क्षणिकाओं की वर्तमान जरूरत को अपने शब्दों में ही परिभाषित कर दिया है। वे वास्तव में जानते हैं कि वास्तविक पाठक क्या चाहता है ? उसे गूढ़ और कठिन शब्दों वाली रचनाओं से परहेज है। जो उसके चित्त के अनुरूप है ही नहीं। अतः रचनाकार महोदय पाठकों की दुनिया में सफल हैं। ये शायद उनका खुद का अनुभव भी हो सकता है। जिस तरह से उन्होंने अपनी रचनाओं की प्रस्तुति दी है उनकी रचनाओं का अध्ययन बताता है कि वे बारीक दृष्टि के स्वामी हैं। विसंगति उनकी नजरों से छिप ही नहीं सकती। और सबसे बड़ी बात कि वे जानते हैं पाठक का मनोविज्ञान। पाठक के मनोविज्ञान को समझ कर लिखने वाले लेखक वर्तमान में बहुत ही कम हैं। ज्यादातर लेखक एजेण्डाबद्ध लेखन करते हैं और अपनी भावी पीढ़ी वही चीज धरोहर के रूप में सहेजने को देकर जाते हैं। जिस रचना का वर्तमान में ही नकार दिया जा रहा है उसे कोई कैसे सहेजेगा वो धरोहर समझ कर।

खैर! उत्तम रचनाओं का संग्रह पढ़कर मन आनंदित हुआ। ऐसा बहुत कम ही होता है कि व्यक्ति किसी संग्रह को हाथ में ले और फिर उसे पढ़कर ही वापस आलमिरे में रखे। अतः रचनाकर महोदय अविनाश ब्यौहार जी को बहुत बहुत बधाई। अगले किसी संकलन का इंतजार रहेगा।

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं। चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है, और ऐसा सोचना पागलपन है।' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है। और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है। ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं। तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें।

शिक्षा को नौकरी से किसने जोड़ा ?

''और भाई! आप कौन से ट्रेड में आई टी आई कर रहे हो ?''

''मैं इलेक्ट्रीशियन ट्रेड में हूं। और आप कौन से ट्रेड में हो ?''

''मैं तो टेलरिंग का कोर्स कर रहा हूं।''

दोनों एकाएक चौंक कर एक दूसरे को देखने लगे। और फिर नजरें झुकाये अपनी अपनी क्लॉस में चले गये। पास खिड़की से झांकता प्रिन्सिपल भी मुस्कुराकर अपने सर के कम बालों पर कंघी फेरने लगा। अपने हाथ की कंघी देखकर अचानक वो जोर से हंस पड़ा। और बुदबुदाया।

''गंजों के मुहल्ले में कंघी बेचना इसी को कहते हैं। इलेक्ट्रीशियन का बाप टेलर है और टेलरिंग सीखने वाले का बाप इलेक्ट्रशियन!''

देखी न गजब की मानसिकता। शिक्षा को न जाने कब नौकरी से जोड़कर जनता को झांसा दिया जा रहा है। हर काम को पहले छोटा बताया जाता है और फिर व्यक्ति के भीतर अपने आप को छोटा समझ कर जीने का भार धर दिया जाता है। जबकि सच्चाई यह है कि दुनिया का हर काम जरूरी है। किसी भी काम के बिना जी सकना असंभव है। यही हमारे देश में हो रहा है। हर आदमी को असंतुष्ट कर देने का काम। हर आदमी अपनी यथा स्थिति से असंतुष्ट है। इस कदर असंतोष भर दिया गया है कि लोग अनुकंपा में सरकारी नौकरी पाने के लिए अपने वृद्ध बाप की मौत का इंतजार करने लगे हैं।

व्यवहारिक बात है कि सरकारी नौकरी कितनों को मिल सकती है ? सभी पढ़ रहे हैं सभी सरकारी नौकरी चाहते हैं। क्या सभी को सरकारी नौकरी देना संभव है ये व्यवहार में संभव है ? अगर सभी नौकरी करेंगे तो बाकी काम कौन करेगा ?

देखें और सोचें। नाई, बढ़ई, कृषक, सपेरा, रेजागिरी, कुलीगिरी, टेलरिंग, हलवाई, कढ़ाई, लोहारी, राजमिस्त्री ऐसा कौन सा काम है जिसके बिना आपका काम चल सकता है ? और तो और औरतों को भड़का दिया कि खाना बनाना दोयम दर्जे का काम है। झाड़ू बर्तन किचन कपड़ा दोयम है। कोई भी दावा करके जमीन में ये बात हकीकत में बदल कर बताये तो मान लेंगे कि ऐसा संभव है। पढ़ाई को बढ़ावा देने के नाम पर नकली हवा फैलाई कि बेटा राजा बाबू बनोगे। (ये बात सही है कि वर्तमान में सरकारी नौकरी राजयोग ही है।) नाई, बढ़ई, कृषक, सपेरा, रेजागिरी, कुलीगिरी, टेलरिंग, हलवाई, कढ़ाई, लोहारी, राजमिस्त्री के बच्चों के मन में भर दिया कि तुम पढ़ लिखकर दुनिया में राज करोगे। वो अब घर के पुश्तैनी काम को करना खुद का अपमान मानने लगे हैं। वो चुनते हैं नया काम। नये काम में सेटल होते हैं उनका बच्चा चुनता है फिर नया काम। वो अपने बाप की जिन्दगी भर की मेहनत पर पानी फेर देता है। वो अपने बाप की पहचान और हुनर को खो देता है किसके लिए ? उस एक हसीन सपने के लिए जो उसे पैदा होते ही मां बाप भाई समाज गुरूजन और सरकार दिखाते है। उस अनजाने सपने को हकीकत में बदलने के लिए वह कूद पड़ता है उस दरिया में जिसमें उसे तैरना नहीं आता है। वो पूरी जिन्दगी स्ट्रगल करता हुआ सामान्य जीवन जीने पर मजबूर रहता है।

अगर वह अपने पुश्तैनी धंधे को अपनाता है तो क्या फायदा है देखें जरा–

1–उसके लिए बाप जिन्दगी भर की मेहनत के बाद इतने ग्राहक इकट्ठे कर देता है कि उसे अपने लिए प्रचार की जरूरत नहीं पड़ती।

2–हुनर फोकट में ही सीख जाता है।

3–चूंकि बचपन से अपने बाप के काम को संभालता है तो उसे उसकी बारीकियां यूं ही मालूम हो जाती हैं। वह अपने जीवन में अपने क्षेत्र में एक नई खोज कर सकने की स्थिति में होता है।

4–उसका जीवन स्तर पहले से और अच्छा होता है क्योंकि वह अपने समय से ही कमाई में लग जाता है।

5–उसका जीवन चक्र सामान्य रहता है। यानी समय पे शादी, समय पे बच्चे और समय पे जवाबदारी से छुटटी। वरना आधी जिन्दगी तो रोजगार ढूंढते ही निकल जाती है। जब उसका बच्चा बड़ा होने को होता है तब तक वह बूढ़ा हो जाता है।

और अगर वह नया धंधा करता है तो उपरोक्त सारी बातें उसके विपरित हो जाती हैं। उसका जीवन दुखमय हो जाता है।

कभी कभी ऐसा महसूस होता है कि मात्र झूठी ठसन के लालच में आदमी अपने जीवन के सारे सुख खो देता है। जैसे कि सुख शांति, यौन सुख, अच्छा और पौष्टिक भोजन, सुरक्षित भविष्य आदि।

आखिर इस शिक्षा को सरकारी नौकरी से जोड़ने की पहल की तो किसने की ? अब तक किसी ने भी इसकी समीक्षा क्यों नहीं की ?

सोचने पर पाते हैं कि इसके पीछे राजनीतिक कारण तो है ही। सभी दल चाहते हैं कि जनता अपनी रोजी रोटी में उलझी रहे और वे देश लूटकर अपनी झोली भरते रहें। इस मानसिकता को तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग यानी साहित्यकार वर्ग कभी आगे नहीं लेकर आया इसका क्या कारण है ? क्या ये भी अपनी झोली भरता रहा ? एक विशेष विचारधारा तो यही कहती है कि असंतुष्ट रहो। हर काम से हर स्थिति से और हमेशा। क्या यही लेखक साहित्यकार वर्ग अपने आपको स्थापित रखने के लिए इस ओर से शुतुरमुर्गी तौर तरीके अपनाया रहा ? इसे मलाई मिलती रही सत्ता की और ये उस मलाई चटाई धंधें में रहकर पूरे साहित्य तो विकृत कर ही दिया पूरे समाज को भी एक अंधे कुयें में ढकेल दिया। शिक्षा को भूख से भी ज्यादा जरूरी बताने की लच्छेदार बातों से साहित्य को गरीब और हाशिये पर रहने वाले लोगों के लिए कहकर पूरी दो तीन पीढ़ी को बरबाद नहीं कर दिया ?

खैर! अब समय आ गया है कि समाज आंखें खोले और विचार करे। भारतीय संस्कृति के अमर वाक्य ''संतोषी सदा सुखी'' को जीवन में अपनायें। शिक्षा का मतलब ज्ञान होना चाहिए न कि सरकारी नौकरी। पर यही विचारधारा समाज में फैल गई है। सरकारी नौकरी के अलावा अन्य काम दोयम घोषित कर दिये गये हैं। बाल श्रम निषेध के नाम पर पैतृक गुणों को अगली पीढ़ी में जाने से रोका जा रहा है। अगर यूं ही लगभग सौ साल और चला तो हम अपनी संस्कृति और संस्कार तो भूल ही जायेंगे साथ ही ज्ञान भी लुप्त हो जायेगा। मात्र वो ज्ञान हुनर का ही नहीं है बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली धरोहर है। जैसे धान और गेंहू की किस्में, जड़ी बूटी से इलाज, प्रकृति से जुड़ाव के रास्ते, पर्यावरण अनुकूल जीवन की परिकल्पना आदि।

जागो भाइयों जागो। अपने पैतृक हुनर से नफरत नहीं गर्व करो और जो उसे दोयम कहे उसका बहिष्कार करो। और नकली बातें लिखने वाले लेखकों से भी अनुरोध है कि सुधार जायें वरना धारा उनकी ओर मुड़ेगी और सबकुछ बह जायेगा।

निवेदन

समस्त साहित्यकारों से निवेदन है कि बस्तर पाति के अगले अंक से पत्रिका में समीक्षा प्रकाशित नहीं की जावेगी अतः आप सभी ध्यान रखें।

सम्पादक

साहित्य एवं कला समाज जगदलपुर का पिछला वर्ष साहित्यिक उपलब्धियों से भरा रहा। लगातार अनेक कार्यक्रमों की झड़ी सी लगी रही। इन कार्यक्रमों में शहर के समस्त साहित्यकार और कलाकार भाग लेते रहे। शरद पूर्णिमा, दीपावली मिलन, लाला जगदलपुरी जयंती, नया साल, गणतंत्र दिवस, बसंत पंचमी, होली आदि अवसरों के अलावा अनेक कार्यक्रम हुए।

इन कार्यक्रमों मंचीय कवि सम्मेलनों की धूम रही। 14 एवं 15 अगस्त को मात्र दो दिनों में तीन कवि सम्मेलन आयोजित हुए। बचेली शहर में आयोजित कवि सम्मेलन अपने दूसरे वर्ष में पूरे शवाब पर रहा। 23 जनवरी को सुभाष जयंती पर किरन्दुल शहर में शानदार कवि सम्मेलन ने धूम मचाई।

28 फरवरी 2018 को ख्यातिलब्ध उल्लू सम्मेलन अपने तीसरे वर्ष में सफलतापूर्वक प्रवेश किया। इस वर्ष के कार्यक्रम ने साबित कर दिया कि ये सम्मेलन देश भर में विख्यात हो चुका है। गर्दभ सम्मेलन, महामूर्ख सम्मेलन जैसे आयोजनों की कतार में अब उल्लू सम्मेलन भी आ चुका है। हजारों लोंगों की भीड़ में सफलतम कार्यक्रम था उल्लू सम्मेलन।

छत्तीसगढ़ माटी कला बोर्ड और छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प बोर्ड के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित प्रदर्शनी में भी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया।

इन कार्यक्रमों से शहर में साहित्य की लहर सी उठी हुई है। अनेक लोग साहित्य से जुड़कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर रहे हैं।

नये रचनाकारों की खोज बदस्तूर जारी है। स्कूलों में कार्यक्रम, धार्मिक मंचों में कार्यक्रम लगातार हो रहे हैं। विभिन्न प्रतियोगिताओं के माध्यम से नये लोगों के बीच साहित्य के प्रति अनुराग पैदा करने की कोशिश जारी है। शहर में और भी संस्थाओं द्वारा कार्यक्रम किये जाने लगे हैं। यह साहित्य की सेहत के लिए अच्छी बात है।

शहर में अनेक प्रसिद्ध लेखक हैं और अनेक ऐसे भी हैं जिनकी रचनाएं आम लोगों तक नहीं आ पाईं हैं। उनके लिए इस पत्रिका के माध्यम से प्रयास किये जा रहे हैं। भविष्य में अनेक संकलन एवं संग्रह प्रकाशित किये जाने वाले हैं। इनके विमोचन पर बड़े कार्यक्रम और भी होंगे।

लाला जगदलपुरी जयंती पर शहर में काफी बड़ा उत्सवनुमा कार्यक्रम होता है। जिसमें आम जनता भी भागीदारी करती है। इस कार्यक्रम में लालाजी के जीवन एवं रचना संसार पर बातचीत होती है। साथ ही साथ कविता पाठ भी होता है। शहर के आस पास के साहित्य प्रेमी जुटते हैं। भविष्य में और भी बड़ा कार्यक्रम कराने की योजना पर विचार कर रहे हैं। इस प्रकार जगदलपुर और बस्तर संभाग साहित्यमय हो गया है।

बस्तर पाति–साहित्य सेवा

''बस्तर पाति'' मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***''बस्तर पाति''*** का वादा है।

रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***''बस्तर पाति''*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***''बस्तर पाति''*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***''बस्तर पाति''*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है।

फार्म–4

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 डी के अंतर्गत अपेक्षित 'बस्तर पाति' नामक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरणः–

1. प्रकाशन का स्थान–	:	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
2. प्रकाशन की आवर्तता–	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम–	:	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	:	हां
4. पता–	:	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
5. प्रकाशक का नाम–	:	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	:	हां
5. सम्पादक का नाम–	:	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	:	हां
पता–	:	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
6. उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो पत्रिका के मालिक और कुलप्रदत्त पूंजी के एक–एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार या भागीदार हैं–	:	सनत कुमार जैन, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.

निवेदन अपने पाठकों और लेखकों से–

आपसे निवेदन है कि आपकी अपनी लोकप्रिय पत्रिका बस्तर पाति के लिए अपनी मौलिक कहानी, समसामायिक और जनसमस्याओं पर आधारित, सामाजिक, साहित्यिक आलेख भेजें। वर्तमान में कविताओं और लघुकथाओं का ढेर लग चुका है। अगले अंक हेतु अपनी कहानी एव आलेख ही भेजें।

संपादक बस्तर पाति

कविता कैसे बदले तेरा रूप

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

आग

धुंआ था फैला हर ओर
पहचानना मुश्किल था
बदहवास चेहरों को,
वैसे भी शायद ही कोई था
जो दूसरों को देखने की
कोशिश कर रहा था
सब तो खुद को ही
जिन्दा रख लेने की
उधेड़बुन में खटे थे
एक ही था वहां
जो पूरे मनोयोग से
लगा हुआ था दूसरों के लिए
और वो थी हवा,
आग के लिए
दिलोजान से समर्पित थी
पर शायद की कोई था
जो उसके कृत्य की तारीफ करता।

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

आग

धुंआ था फैला हर ओर
पहचानना मुश्किल था
बदहवास चेहरों को,
वैसे भी शायद ही कोई था
जो दूसरों को देखने की
कोशिश कर रहा था
सब तो खुद को ही
जिन्दा रख लेने की
उधेड़बुन में खटे थे
एक ही था वहां
जो पूरे मनोयोग से
लगा हुआ था दूसरों के लिए
और वो थी हवा,
आग के लिए
दिलोजान से समर्पित थी
पर शायद की कोई था
जो उसके कृत्य की तारीफ करता।
परमार्थ पर ऐसा विरोधभास कुछ अजीब था।

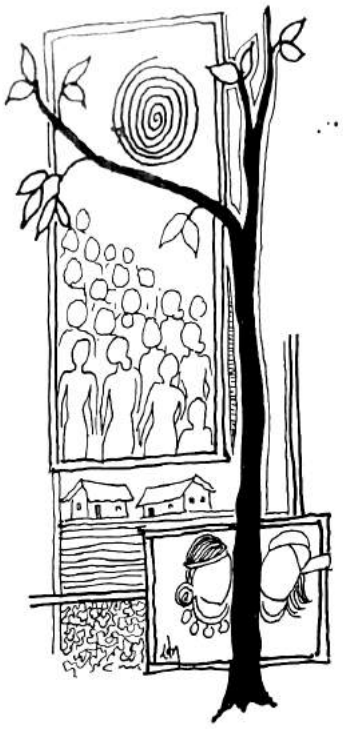

फेसबुक वॉल से

पथराई संवेदनाओं के बीच भी मुस्कुरा लेता हूं मैं,
खुरदरी जमीन पर भी,
मिल जाती है खुशी कभी–कभी।
शुक्रगुजार हूं उस रब का,
बस अपने हक की हंसी चुरा लेता हूं मैं।

श्री शैलेन्द्र सिंह ठाकुर की वॉल से

महंगाई के छंद
———
डिजीटल इंडिया जरूर लाइए,
लेकिन डाटा पैक के दाम मत बढ़ाइए।
तकलीफ होती है, फेसबुक, वाट्सअप चलाने में,
प्लीज थोड़ा तो इंटरनेट को सस्ता कर दीजिए।
पेट्रोल के दाम और घटाइए,
मगर केरोसिन जरूर समय पर दिलाइए।
महंगा हो गया है चूल्हे को सुलगाए रखना,
प्लीज रसोई गैस के दाम मत बढ़ाइए।।
गरीब को भी मिले कटोरी भर दाल,
कसम है आपको महंगाई की दुकान की,
प्लीज महंगाई डायन को कुछ तो कंट्रोल में कीजिए।

श्री कृष्णशरण पटेल की वॉल से

लफ़्ज़ों के मिठास के आगे सब कुछ फीका है।
नज़र–अंदाज़ कर कहाँ किसी ने कुछ सीखा है।
अपनी अहमियत को कभी भी कम तो मत आँको,
क्योंकि तुझे देखकर कोई और भी जीता है।
चेहरे से याद रहोगे, ये भूल भी जाओ,
याद रह जाता हमेशा सभी का सलीक़ा है।
खुद पर गुज़रा तो हर–एक गुनाह समझ आया,
कल तक अंज़ान थे, दूसरों पर क्या बीता है ?
बहुमूल्य रत्नों में कौन है कीमती जान लो,
सच कड़ी मेहनत सा नहीं कोई नगीना है।
इंसान हो तो बस पी जाओ सारे ग़मों को,
वरना देख लो ग़म ही इंसान को पीता है।
आज के दौर में तुम चुस्त–दुरूस्त रहो "कृष्णा",
पिछड़ जाता हमेशा वो, जो रहता ढीला है ।

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः–

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः–

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः–श्रीमती जयश्री जैन, श्रीमती रचना जैन, शमीम बहार, मनीष अग्रवाल जगदलपुर, श्याम नारायण श्रीवास्तव रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, नलिन श्रीवास्तव राजनादगाव, ऋषि शर्मा 'ऋषि', बीरेन्द्र कुमार मौर्य जगदलपुर, टी आर साहू दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया कोण्डागांव, निर्मल आनंद कोमा, राजिम, कांति अरोरा बिलासपुर, राजेन्द्र जैन भिलाई, मिश्रा जी, नूर जगदलपुरी जगदलपुर, हरेन्द्र यादव कोण्डागांव, महेन्द्र यदु कोण्डागांव, एस.पी.विश्वकर्मा कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, जितेन्द्र भदोरिया जगदलपुर, आर.बी. तिवारी महासमुंद, मे. होटल रेनबो जगदलपुर, संजय मिश्रा रायपुर, इश्तियाक मीर जगदलपुर, सोनिया कुशवाह, श्रीमती पूर्णिमा सरोज रूपाली सेठिया, राजेश श्रीवास्तव, महेन्द्र सिंह ठाकुर, चंद्रशेखर कच्छ, में.पदमावती किराना स्टोर्स, दिलिप देव, तृप्ति परिडा, धरमचंद्र शर्मा, हेमंत बघेल जगदलपुर जी.एस. वरखड़े जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल जगदलपुर, अनिल कुमार जयसवाल भिलाई, वीरभान साहू रायपुर, प्रीतम कौर, मनीष महान्ती, प्रणव बनर्जी, शेफालीबाला पीटर, यशवर्धन यशोदा, शरदचंद्र गौड़, सुरेश विश्वकर्मा श्रीमती शांती तिवारी, विनित अग्रवाल, एन.आर. नायडू, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, जयचंद जैन, कुमार प्रवीण सूर्यवंशी, भरत गंगादित्य, मिनेष कुमार जगदलपुर, शिव शंकर कुटारे नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता जगदलपुर, अखिल रायजादा बिलासपुर, श्रीमती दंतेश्वरी राव कोण्डागांव, पी. विश्वनाथ जगदलपुर, श्रीमती रजनी साहू मुबई, श्रीमती वंदना सहाय नागपुर, श्रीमती माधुरी राउलकर नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा नागपुर, अरविन्द अवस्थी मिर्जापुर, देव भंडारी दार्जीलिंग, जगदीशचंद्र शर्मा घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा रश्मि जयपुर, नुपूर शर्मा भोपाल, मो.जिलानी चंद्रपुर, डॉ.अशफॉक अहमद नागपुर, रमेश यादव मुंबई श्रीमती सुमन शेखर ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र., श्रीमती प्रीति प्रवीण खरे भोपाल, डॉ. सूरज प्रकाश अष्ठाना भोपाल, डी.पी.सिंह रायपुर, प्राचार्य दंतेश्वरी महाविद्यालय दंतेवाडा, रोशन वर्मा कांकेर, मनोज गुप्ता रायपुर, श्रीमती कमलेश चौरसिया नागपुर, डॉ. कौशलेन्द्र जगदलपुर, पूनम विश्वकर्मा बीजापुर, अमृत कुमार पोर्ते, जगदलपुर, अविनाश ब्यौहार जबलपुर, धनेश यादव, नारायणपुर, कृष्णचंद्र महादेविया, केशरीलाल वर्मा, बचेली, संदीप सेठिया तोकापाल, श्रीमती हितप्रीता ठाकुर, परचनपाल, गोपाल पोयाम, पंण्डरीपानी, श्रीमती खुदेजा खान, जगदलपुर, श्रीमती वीना जमुआर पूना, श्रीमती रजनी त्रिवेदी, जगदलपुर श्रीमती मेहरून्निसा परवेज़, भोपाल, धरणीधर, डिमरापाल, चंद्रकांति देवांगन, जगदलपुर, श्रीमती तनुश्री महांती जगदलपुर, चंद्रमोहन किस्कू झारखण्ड, डॉ उषा शुक्ला जगदलपुर, चमेली कुर्रे जगदलपुर, क्षत्रसाल साहू दुर्गापुर, गौतम कुमार कुण्डू जगदलपुर, रीना जैन जगदलपुर, अलका पाण्डे भानपुरी, प्रहलाद श्रीमाली, चेन्नई मिथिलेश अवस्थी नागपुर, उमेश मण्डावी कोण्डागांव, त्रिलोक महावर अम्बिकापुर, पूर्णिमा विश्वकर्मा, नासिक,बालकृष्ण गुरू खैरागढ़, डॉ धुंडीराज, कोल्हापुर, पृथ्वीराज टाटिया जगदलपुर, संदीप नगराले पुणे, लक्ष्मीसिंह जगदलपुर

बस्तर पाति का कवर पेज एवं भीतर के चित्र–श्री खेम वैष्णव

श्री खेम बस्तर क्षेत्र के वो कलाकार हैं जो बस्तर क्षेत्र की संस्कृति के लिए जीते है अपने जीवन की प्रत्येक दिनचर्या को संस्कृति की रक्षा और उसकी सेवा में समर्पित कर दिया है। उनके घर में यत्र तत्र बिखरे पन्नों पर बस्तर की संस्कृति के जीवंत चित्र मुस्कुराते हैं। आदिम संस्कृति के जीवन, पूजा पाठ, रीति–रिवाज, पहनावे और घर मकान जंगल, सबकुछ तो है उनके चित्रों में। चित्रों के साथ ही साथ उन्होंने बस्तर की संस्कृति का भी अध्ययन कर लिया है। उनके पास एक आदिम संस्कृति के शोधकर्ता से कहीं ज्यादा जानकारी भी उपलब्ध है। उनकी बारीक दृष्टि में आदिम संस्कार का हर वो पल कैद हो जाता है जिसे सहेजने की आवश्यकता है। हम भविष्य में भी उनके बनाये चित्रों की श्रृंखला का रसास्वादन करेंगे।

बस्तर पाति के बैक कवर पेज के फोटोग्राफर–श्री शैलेष यादव

श्री शैलेष यादव जी एक विचित्र फोटोग्राफर हैं। वे कब किसकी फोटो खींच खांच कर रख लेते हैं पता ही नहीं चलता। वे सबसे पहले चित्र लेने के लिए मानसिकता मन ही मन में बना लेते हैं सारी तैयार कर लेते हैं उसके बाद केमरा उनका चमकता है।

वो केमरा एक यादगार तस्वीर तैयार कर हमारी नजरों में दमकने के लिए छोड़ जाता है। हम सोच में पड़ जाते हैं कि वही दृश्य हमने भी देखा था पर हमें वो इस तरह क्यों नहीं दिखा। शांत स्वभाव के धनी, मिलने जुलने में विश्वास नहीं रखते, चुपचाप अपनी शौक को पूरा करते हैं। शैलेष भाई जब तब फोटो खींच कर मेल करते रहते हैं। उनके प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र लाजवाब होते हैं।

उंगलबाज–
तालियों की गड़गड़ाहट

''अब आपके सामने प्रस्तुत हैं युवा कवयित्री जिनकी रचनाओं में जो दम है वो वरिष्ठ लोगों की रचनाओं में भी नहीं है। अपनी खनकती आवाज में आपका दिल हरने आ रही हैं सपना जी।''

''.....''

''जैसी सुन्दर ये हैं उससे कहीं ज्यादा उनकी कविताएं सुन्दर हैं। आज तक जिसने भी इनकी रचनाएं सुनी हैं वे इनके फैन हो गये हैं। तो आपके सामने आ रही हैं सपना जी। तालियों से स्वागत करें।''

''मैं आपके सामने अपनी कविता पढ़ना चाहती हूं जिसका शीर्षक है–''मेरे दिल का राजा''

वही है मेरे इस दिल का राजा,
जिसके लिए लिखी है मैंने ये कविता।
कविता से पहुंचे मेरा संदेश उस तक
मैं उसे कर रही हूं याद
हमेशा हूं पागल उसके लिए।''

''वाह! वाह!!'' मंच संचालक ने तारीफ करी। सपना जी रूक कर मुस्कुराईं और फिर आगे पढ़ना शुरू किया।''